| प्राथमिक स्रोत | गुलेरी रचनावली, भाग-1, भाग-2, संपादक डॉ. मनोहरलाल, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली (1991) |
| संदर्भ ग्रंथ | | |
| अजय | तिरंकु, सूर्य प्रकाशन मंदिर बीकानेर, भारती प्रिंटिंग, दिल्ली-32 (1986) |
| अमृतराय | नयी समीक्षा, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद (1965) |
| इन्द्रनाथ मदान | आधुनिकता और हिंदी साहित्य, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1973) |
| प्र.आर. देसाई | भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठीयूति, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, नई दिल्ली (1996) |
| एम.एन. श्रीनिवास | आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निवंध, हिंदी माध्यम क्रियान्वयन निदेशालय (1992) |
| | आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली (1996) |
| किशोरी दास वाजपेयी | हिंदी शब्दानुशासन, नागरी प्रचारिणी समा, वाराणसी, संवत् 2045 वि. |
| गंगा प्रसाद ‘विमल’ | आधुनिकता : साहित्य के रंगरंग में, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड (1978), दिल्ली-32 |
| गोविंद चंद्र पाण्डेय | भारतीय परंपरा के मूल स्वर, नेशनल पुस्तिकागृह लाइब्रेरी, नई दिल्ली (1993) |
| झाबर मल्ल शर्मा | गुलेरी गरिमा ग्रंथ, नागरी प्रचारिणी समा, काशी, संवत् 2047 वि. |
| दिनकर | संस्कृति के चार अध्याय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, (1998) |
नगेन्द्र

- नई समीक्षा, नये संदर्भ, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली (1974)

नामवर सिंह

- कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन दिल्ली (1993)
- वाद—विवाद—संवाद, राजकमल प्रकाशन दिल्ली (1983)
- दूसरी परंपरा की खोज, राजकमल प्रकाशन (1993)
- हिंदी के विकास में अपभ्रंश का योग, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971, पंचम संस्करण

निर्मल वर्मा

- भारत और यूरोप : प्रतिशृंखल के क्षेत्र, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1991)

निर्मला जैन (सं.)

- नयी समीक्षा के प्रतिमान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, दिल्ली—2 (19 )

नेमिचंद्र जैन (सं.)

- मुक्तिबोध रचनावली भाग—5, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1980)

भगवत शरण उपाध्याय

- भारतीय संस्कृति के स्रोत, पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस प्रा. लिमिटेड, नई दिल्ली (1991)

भगवती प्रसाद सिंह

- मनीषी की लोकयात्रा, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी (1968)

भारत यादव

- महावीर प्रसाद दिव्येदी रचनावली; किताबघर, नई दिल्ली—2 (1995)

मनोहरलाल (सं.)

- गुलेरी साहित्यलोक, किताबघर, नई दिल्ली—2 (1984)
- गुलेरी रचनावली, किताबघर, नई दिल्ली—2 (1991)

मुक्तिबोध

- भारत: इतिहास और संस्कृति, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1985)
मेनेजर पाण्डेय
- साहित्य और इतिहास दृष्टि, पीपुल्स लिटरेसी, नई दिल्ली (1981)
- साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका, हरियाणा साहित्य अकादमी, चंडीगढ़ (1989)
- शब्द और कर्म, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1996)

रघुवंश
- आधुनिकता और सृजनशीलता; मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, दिल्ली—32 (1980)

रमेश कुंतल मेघ
- आधुनिकता बोध और आधुनिकीकरण, अक्षर प्रकाशन, दिल्ली (1969)
- 'क्योंकि समय एक शब्द है' लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (1975)

रमेश चंद्र शाह
- भूलने के विरुद्ध, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1990)

रवीन्द्रनाथ मुकर्जी
- सामाजिक विचारधारा; विवेक प्रकाशन, दिल्ली (1996)

रामचंद्र शुक्ल
- हिंदी साहित्य का इतिहास; नागरी प्रचारिणी सम्भा, वाराणसी, 2052 वि.
- चिन्तामणि, भाग 1, 2, 3 क्रमशः
- रसमीमांसा (सं—विश्वनाथ मिश्र), नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, संवत 2048 वि.

रामविलास शर्मा
- भारत के प्राचीन भाषा परिवार और हिंदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, भाग—1,2,3, क्रमश: 1979, 80, 81
- भाषा और समाज, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1976)
- आचार्य रामचंद्र शुक्ल और हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1993)
- परंपरा का मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1981)

- लोक जागरण और हिंदी साहित्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली (1985)

रामस्वरूप चतुर्वेदी - हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद (1983)

विश्वनाथ श्रीपाठी (सं.): चंद्रधर शर्मा गुप्ते, प्रतिनिधि संकलन, नेशनल बुक ट्रस्ट, नई दिल्ली (1997)

- हिंदी आलोचना, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली (1993)

वीर भारत तलवार - राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य (कुछ प्रसंग कुछ प्रवृत्तियों), हिमाचल पुरुषतं भंडार, दिल्ली (1993)

श्यामाचरण दुबे - समय और संस्कृति, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली (1996)

सुनीति कुमार चाँदूर्य - भारतीय आर्य भाषा और हिंदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, पांचवा संस्करण (1989)

हरदेव बिहारी - हिंदी भाषा, अभियंतित प्रकाशन, इलाहाबाद (उ.प.) (1996)

हजारी प्रसाद शिवेदी - मध्यकालीन बोध का स्वरूप, पब्लिकेशन ब्यूरो, पंजाब यूनिवर्सिटी, चंडीगढ़ (1970)

अंग्रेज़ी


Y. Singh - Modern Section of Indian Tradition, Rawat Publication, Jaipur, Raj. (1986)

इसके अलावा हिंदी एवं अंग्रेज़ी की पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेख।
पं. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी के संस्कृत साहित्य का हिन्दी अनुवाद
शिवासर्वनाम् (शिव की अर्चना)

श्लोक —
“सृजते, पालनकर्त्रे, सहर्ते धारयित्रे नः।
ईशिते, परपित्रे, नमो नमस्ते जगदभर्ते।”

अनुवाद —
जो सृष्टि करने वाले, पालनकर्ता, हजारों रूपों को धारणकर हम
लोगों की रक्षा करने वाले जगदीश, परमपिता, संसार का स्वामी है,
उन्हें प्रणाम है।

1. श्लोक —
“नहि हर! प्रतिमासु रति: कृता,
न च मया श्रुतय: परिशीलिता।
भवतश्चरणाम्बुजे मुनिब्रते,
मम न्तिप्रतिपादन धृष्टता” ॥ ॥

अनुवाद —
मैंने विश्व की मूर्तियों से प्रेम नहीं किया है, वेदों का सम्पूर्ण अध्ययन
भी नहीं किया है। आपके चरण कमलों में मुनिब्रत को धारण करके
मात्र सिर झुकाना तो मेरी धृष्टता है।

2. श्लोक —
“सकरुणं रणतो भवत: पुरो,
नहि मम क्षणदायकादरस्यन।
गणपतात्! कृत: कृपणो भवान्
वितरणे करुणाकरणस्य में” ॥ ॥

अनुवाद —
हे शिवजी, आपके समस्या करुणापूर्वक रूढ़ित करते हुए रात्रि को
एक क्षण के समान व्यतीत कर दिया है (गणेशजी के पिता) मेरे लिए
करुणा का एक क्रण वितरित करने में इतने कृपण क्यों हो गये।
(गणपति तात! क्यों कृपण हो गए।)
3. रूक —
“विदितमेव शिवोदय शिवें: कथम्,
जगदिनिष्टविवारणचुंजूचुमिः।
तिलकलिप्तलालामदालसे —
विषयकीटजैनरवलोकयसे?” \[13\]

अनुवाद —
संसार के अनिष्ट को निवारण करने में समर्थ शिव के तिलक लगा
हुआ सुंदर ललाट, विषयी कीट के समान, शिव के मंगलमय भक्तों
द्वारा देखा जा रहा है, ऐसा विदित है।

4. रूक —
लालाटिकोपि यदि लागुङ्कस्तकस्वामः,
“नायं प्रसंग इति भंड़ि गविनस्तत्तभूः।
देशाय, सत्यभमित भीषितदेववृन्दः,
रचनानन्यश्रीयसुष्मामहि दापेयम्” \[14\]

अनुवाद —
ललाट पर द्वितीया के चंद्र टेढ़े हैं। अकारण भोभमा में झुके हुए टेढ़े
भीं हो को देखकर डरते हुए देवताओं से, देश के लिए यह सत्य ही
कहा गया है कि स्वतंत्रता, वीरता और सुंदरता यहाँ दीप्ति हो रही
है।

5. रूक —
“तदपि सोइहमिति श्रुत प्रत्ययाद,
भगवतो भवतो दिशि करिष्टः।
किरिति किं न खोदिषि तत्रियो,
लघुरपि स्वकराणि स प्रस्तरः।” \[15\]

165
अनुवाद — आप भगवान का यह प्रस्तर, (लिंग), “मैं वह हूँ” इस विश्वास के साथ जिस प्रकार सूर्य की किरणें दिशाओं में फैली हुई हैं वैसे ही अपनी प्रय छोटी किरणें को क्यों नहीं फैलाते (फैलाता) है।

6. श्लोक — “भावत्कपूजनमित्येषु सुरालयेषु
पापानि कानि च कृतानि, मया महेश!
दोषो न मे, यदि भवेद्वभ दच्छस्यस्य,
पापोपयोगि, निजवासविहीनदेशाम्” ।।६।।

अनुवाद — हे महेश, भावपूर्वक पूजा के बहाने मंदिरों में मेरे द्वारा जो कुछ पाप किए गए हैं, तो इसमें मेरा दोष नहीं है। यदि दोष हो (होवे) तो हे शिव! पाप से रहित अपने निवास वाले देश को दिखाए।

7. श्लोक — “मालेमलिनासि जयापसर्म,
सान्ये न सन्धिघटते तवात्र!
पारायणासि त्वमरणयोरदी;
तव भस्म भस्मः, नतिर्न नुत्या।” ।।७।।

अनुवाद — हे माले, तुम मालिन हो गई हो, हे जपा तुम दूर हो जाओ। हे सान्ये, तुम्हारा यहाँ संयोग नहीं हो रहा है। तुम अरण्य रूदन में ही नियुक्त हो। हे भस्म, तुम ही (तुम्ही) एक शिव के लिए ग्राह्य हो।

8. श्लोक — “ये साधनत्वेत् वृथा भवन्त—
स्ते बाधकत्वं गतवन्तं इत्यम्।
दम्भारितोत्कोच वशीकृता: र्थ्यं,
तच्छस्त्रभुता: कुटिला वृथैव।।” (१८)
अनुवाद –
(जो) जिस साधन से आप लोग वरण किये गए हैं इस उससे लोग बाधा (बाधक) को प्राप्त हो गए हैं। दम्भवजीर रिश्वत देकर आप लोग वश में किए गए हैं इसलिए शास्त्र के समान आप लोग व्यर्थ ही कुटिल हैं।

ब्रह्मविद्याभूषण भवति
(ब्रह्मा को जानने वाला ब्रह्म ही होता है।)

"त्रिगर्तभूपकुल मान्यपुरोहितानाम्।
मूर्त्या प्रसिद्ध—मणिवत्कुलमालिरत्नम्।
वाराणसेरुद्धविद्यशास्त्रसम्पन्।
मत्स्यप्रदेश नृपुजितपादपदम्।।
अध्याया सर्वशास्त्रार्ण्यक्रमविद्याप्राप्ते।
छात्रान् सहस्त्रशः श्री 108 श्रीशिवराममहाशया।।
आप्रकाम: सत्यकामो मुक्तकर्मफलस्पृहः।
चतुर्भुद्रलोकालसुकर्मा भूरिदक्षिणः।
मार्गसिद्ध:—चतुर्दशा पराशे बुधवासरे।
जीवनवासस्तुरनु त्यक्त्वा ब्रह्ममूयमावप्रवान्।।"

अनुवाद –
त्रिगर्तराज के द्वारा माननीय पुरोहितों में सर्वश्रेष्ठ, अपने कुल में शिरोमणिरत्न, वाराणसी के विद्वानों में वंदनीय शास्त्रज्ञ, मत्स्यराज के द्वारा पूर्वित चरणकमलवाले, सभी शास्त्रों एवं परा तथा अपरा ब्रह्म विद्या को हजरार्थ छात्रों को पढ़ाकर महायस्वी श्री 108 शिवराम सभी इच्छाओं को पूर्णकर सत्यनिष्ठ कर्म और उसके फल की प्राप्ति की इच्छा से मुक्त, कल्याण तत्क्षोबुद्ध से समान जगत में सुंदर कर्म करके प्रचुर दक्षिणा देने वाले, मार्गशीर्ष (अगहन) मास के
शुक्लपक्ष की चतुदशी, बुधवार के दिन अपरान्ह में, पुराने वर्तम के समान इस शरीर को छोड़कर ब्रह्म में समाहित हो गए।

मार्ग शुक्ल 3 सं. 67

विलपन्तः
चंद्रधरकरमदेवजगद्धरयोगेश्वरा:
जयपुरम्

श्लोक में "अभयं द्वे जनक प्राप्तोनसि
तरति शोकमात्सवित्"

अनुवाद में हे पिता आप अभय स्थान को प्राप्त कर लिए हैं, जो आत्मज्ञानी है वह शोकरहित हो जाता है।

आशीर्वाद:
(आशीर्वाद)
"आतारमार्यधर्मान् द्रष्टारं सर्वकर्मणाम्।
जगदीशं मुहुर्तवा भक्त्या विज्ञापयामहे।।
अद्याभिमेश्यमाण: श्रीजार्जपञ्चममूप्ति:।
धर्मंगोता भारतानां जयताज्जयतात्माम्"।।

अनुवाद में आर्य धर्म की रक्षा करने वाले, सभी कार्यों को देखने वाले जगदीश को भक्तिपूर्वक बार-बार नमन करके यह बता रहा हूँ कि आज जार्ज पंचम का राज्य अभिषेक होने वाला है। वे भारत धर्म के रक्षक हैं; उनकी जय हो, जय हो।

"पतश्चोदेति सूर्योऽस्तं च चन्द्र च गच्छति।
सर्व तदृ योवनाशवस्य मान्यता: क्षेत्रमुच्यते।
एडवर्डेशचक्रवर्ति – जार्जपञ्चमसम्पर्क:।
चित्रं यत्रप्राप्यसाम्राज्ये रविरसं न गच्छति।
उदयावुदयं यावं विक्रमते रवि:।
तावच्छासितुस्येकवच्छत्रान्न च्यवते हारसी।।

अनुवाद – जहाँ सूर्य उगता है और जहाँ अर्ष होता है वह सब युवनाश्व और मान्यता का क्षेत्र कहा जाता है। एडवर्ड के पुत्र चक्रवर्ती राजा जार्ज पंचम के साम्राज्य में तो सूर्य अर्ष नहीं होता है यह आश्चर्य है।
जिस प्रकार उदयाचल पर उदित होकर सूर्य प्रकाशित होता है वैसे ही ये एकछत्र शासन करें, वह कभी हासित न हो।

श्लोक – “अनरुन्तुदकरमक्ष्ठयुक्तारोह न नैकुबधुयुक्तम्
बहुगुरु समदर्शनयुतमन्दमभ्रमभापि निर्दोषम्।।
अश्रुतमित्रग्रहणं सदोदयं राज्यचक्रमस्येतत्।
ध्रुवसुवर्णं ध्वप्परवश्मतिशेते सौरमण्डलं स्वमनं।।”

अनुवाद – अक्षय सूर्य की किरणों से युक्त मंगलग्रह से युक्त केवल एक बुध के सानिध्य न होने से प्रभावशाली गुरु के समान दिखाई देने वाले, शनि और राहु से रहित निर्दोष ऐसी ग्रह मैत्री पहले नहीं सुनी गई है।
चक्रवर्ती राजा के योग सदा उदित रहने वाले जैसे ध्रुवतारा,
सौरमण्डल और आकाश में अचल है वैसे ही सम्पूर्ण राज्य पर शासन करने वाले हैं।

श्लोक – “दर्शितसहानुभूति: समदृष्टिर्पीह सर्ववर्णं।”
न पितु: स्मारयसि तं ततोधिक हर्षितप्रकृति:।।
सकरुण शासनकर्त्रः वंशोजनेत्रा सदा प्रजापिता।
न पति नन्दा भवता जातेन विजित्वरी देवी।।

अनुवाद — सभी वर्णों पर समुद्धिट और सहानुभूति रखने वाले तुम अपने पिता की याद नहीं आने देते हो। अपने पिता से भी अधिक प्रसन्न स्वभाव के हो। तुम दयालु शासक, वंश की उन्नति करने वाले प्रजा के पिता हो। आपके पौत्र रूप में उत्पन्न होने से विकटोरिया देवी गिरी नहीं है।

र्लोक — “नप्ता ऋश्वीणामार्ग्यो मेधावी यः स्वयं ऋषि:।
बहुभ्यः सड़.गतेय्योज्सो प्रियते यज्ञकर्मणि।।
एवं विजयिनीपौत्रं सप्तमैववर्दवन्दनम्।
कृत्तिनं पञ्चचमं जार्ज भारतीया वृन्निमहे।।”

अनुवाद — श्रेष्ठ ऋषियों के वंश में उत्पन्न मेधावी स्वयं ऋषि हैं और बहुत सत्संगति के कारण स्वयं यज्ञकर्म को वरण करते हैं। इस प्रकार की विजयिनी का पौत्र एदवर्ष स्तपम के पुत्र यशस्वी जार्ज पंचम को हम भारतीय वरण करते हैं।

र्लोक — “तेन बाह्याभ्यान्तराणां कलेशानां नामशेषता।
एथमाना समृद्धिश्च भूयानः: शाशवती: समा:।।
बृद्धिसामीशिता राजन! भारतानामधेशित।
ईशित: पञ्चकृष्टीनां तं जीव शरद: शतम्।।”
अनुवाद – वे सभी आन्तरिक और बाह्य कलेश्यों को समाप्त कर दिए हैं, समृद्धि को बढ़ाने वाला ऐसा शासक सीकड़ो यथा में नहीं होगा। हे राजन, ब्रिटिशों के प्रिय, भारतीयों के प्रिय, पाँच महाद्वीपों के प्रिय तुम सो यथार्थ तक जियो।

रलोक – “यानि पदानि र्वने भारतवर्ष्या न लेमिरेपूर्वम्।
तदाता तदसुत: कथं न राजेन्द्र! तैर्चन्द्र?
अनुदिनमाधिकाधिकताः तधि प्रजानां प्रजासु ते स्नेहः।
यायादनुग्रहस्य तास्ते त्वामयानुग्रहश्च सर्वं”।

अनुवाद – भारतवर्ष पहले कभी जिस पद को प्राप्त नहीं किया था हे राजेन्द्र!
तुम उसको देने वाले हो, तुम उन भारतीयों (प्रजा) के द्वारा क्यों
वन्दनीय होंगे। जैसे पिता पुत्र पर स्नेह करता है, उसी तरह
दिनोदिन तुम प्रजा पर प्रेम बढ़ाने वाले हो। तुम ऐसा ही प्रति धारण
किये रहो और प्रजा भी तुम्हारे प्रति वैसा ही भाव रखे।

रलोक – “परिष्ठिहिताननयमाननतिक्रामान् समुद्र इव वेलाम।
महिषीसहितोस्मार्क मानसपिठे विराजस्व।।
दुर्भिक्षासिद्धकामाद वृक्षयादायनन्तरोपपलवा–
–दस्युभ्य: परचक्रतो व्यसनतो मौढ़याद विनाशात् त्वया।”

अनुवाद – समुद्र की लहरों के समान सभाओं में निर्धारित नियमों का अतिक्रमण
करते हुए अपनी महारानी के साथ हमारे हृदयरूपी आसन पर
विराजमान हों। अकाल के भय से, प्लेग के भय से, हिंसक जंतुओं के
भय से, आंतरिक उपद्रव के भय से, र्वसन से, मूर्खता से, विनाश से,
तुमने सहर्ष देश की प्रजा को छुड़ाया और रखा किया।
श्लोक – "त्रातानाममतिहर्षवर्षदमलस्त्राणां प्रजानां दृश्यत्वां
नित्यं परिपान्त, किं कविचिम? किं देवते? किं बले:?
शुवो राजा विशा भूया ध्रुव कीर्तिज्ञवोदयः।
इत्याशिषः समर्पन्ते श्रीचन्द्रधर शर्मणा।।"

अनुवाद – क्या सैनिकों द्वारा, क्या ईश्वरीय कृपा द्वारा, क्या बल के द्वारा तुम राजा ध्रुव जैसी भक्ति कीर्ति और उन्नति को प्राप्त करो ऐसा आशीर्वाद श्रीचन्द्रधर शर्मण के द्वारा तुम्हें दिया जा रहा है।

यजः (यजः)

श्लोक – "जयतु जयतु राजा पञ्चमो जार्जनामा,
जयतु जयतु राजी सापि मैरी बदनया।
जयतु जयतु ताम्यां त्रात एवार्यधर्मो,
जयतु जयतु नीवृद्ध भारतानां पुराणः।।"

अनुवाद – जार्जं पंचम नामक राजा की जय हो, मैरी नाम की रानी की जय हो। उन दोनों के द्वारा रक्षित आर्य धर्म की जय हो। भारतीयों के द्वारा करण किये गये पुराणों की जय हो।

स्थिरत्वम् (स्थिरता)

श्लोक – "आरोपिता शिलायामभेव त्वं स्थिरा भवेतुयक्तवा।
विजहाति नेव भार्या कदापि जनिपरंपरा स्वार्यम्।।
अत एवाल्दुंग्लेलैकैभूपाल: सकलमड़.गलप्रसवः।।
स्कोनससमागतदृष्ट: संस्तरयुक्ते निवेश्यते पीठे।।"
यद्यपि तमेव भूपत तदस्राज्यम् दातवर्जितमीहानाः।
हर्षेन सादयमो देहल्यां ह्रदयदेहल्याम्।।

अनुवाद — जिस प्रकार पत्नी (कथौ) शिला पर खड़ी होकर अपने वर के प्रति शिला के समान अड़ंग रहती हैं और स्थिर रहती हैं, उसी प्रकार तुम भी स्थिर बनो। उसी प्रकार जिस प्रकार रत्नी अपने मातृत्व को कभी नहीं त्यागती हैं, वैसे ही तुम अँग्रेज शासक सभी मंगलों को देने वाले, इंग्लैंड के सुंदर सिंहासन पर बैठने वाले के भारत आने पर हम भारतीय भी उस राजा के राज्य की अजरताके लिए दिल्ली रूपी ह्रदय की देहली में सहर्ष स्थान दे रहे हैं।

द्विजत्वम् (द्विजत्व)

श्लोक — "अयमाध्यष्टिचत पुरा पुरोधसा बृद्धिराजपीठस्थः।
तत्जातकर्मसहितं प्रथमं जन्मास्य मन्नेह सर्वं।।
अनुभा जगदाचार्यस्थायायहर्वत्स्य देहलीं रम्याम्।
उपनीतोजलंकुरं द्विजभूम्तो द्विजपतिद्विजजाविष।।"

अनुवाद — पहले पुरोधितों के द्वारा ब्रिटिश राज्य के सिंहासन पर आपका अभिषेक किया गया, वह सब इस जन्म के जातकर्म आदि संस्कारों को हम लोग मान रहे हैं। इस समय संसार के गुरु इस आर्यवर्त की सुंदर देहली में तुम, द्विज रूप में, द्विजों के स्वामी शासक के रूप में सुशोभित हो।

उभयपक्षमुखदत्तम्
(तुम अभय पक्ष को सुख देने वालो)
श्लोक – "सर्वभारतसाम्राज्य – विजयागर्देहलीम्।
गुणानुरक्तजनता – चित्रमन्दिरदेहलीम्।।
नतिभि: सर्वभूपाणां पूज्यशालिनिदेहलीम्।
देहलीदीपक इव देहली समधिष्ठितः।।
ब्रूतिसंभारतानां च नयनानन्ददायकः।
तमोनिगुण्यद्वायं यज्ञायम्यन्तरसम्भवम्।।"

अनुवाद – संपूर्ण भारतीय साम्राज्य के विजय के केंद्र में दिल्ली, आपके गुणों से अनुराग करने वाली जनता के हृदय की मंदिर दिल्ली, सभी राजाओं के द्वारा सम्मानित दृष्टि पर शासन करने वाली दिल्ली, भवन के द्वार पर दीपक जैसी सुशोभित दिल्ली में बैठकर ब्रिटिशों और भारतीयों के नेत्रों को आनंद देने वाले आपने आन्तरिक और बाह्य अंधकार को दूर कर दिया।

यश: (यश)

श्लोक – "बहुराजवती भूमिमेत्य राजन्यतीं व्यथाः।
मध्ये राजन्यरकं राजन! विराजिण विराजजे।।
न नाथासि प्रजानाथ! नामां नाथामहें तपि।
नाथवन्तस्वयं स्याम इति नाथामहें हरे।।"

अनुवाद – हे राजन! बहुत राज्यों वाली इस भूमि पर आकर यहाँ के राजाओं से अधिक आप उसी प्रकार सुशोभित हो रहे हैं जिस प्रकार देवों में इंद्र शोभित होते हैं। हे प्रजा के नाथ! आपके समान कोई नाथ नहीं है। पाप तुम्हारे पास तक न पहुँचे। हम विष्णु भगवान से प्रार्थना करते हैं कि आप जैसे स्वामी से हम सनाथ रहें।

174
इंद्रत्मः (इंद्र के समान)

श्लोक । “अदरायः सप्तसिग्नून जागरणेश्वर धन्वसु।
पचतः सुन्ततो वापि धर्माध्याजणम् सदावसि।।
वज्रस्य भर्तर बलजितः। पाजुचजन्य! प्रजापति!
कल्याणीकांत! सुक्ष्म! इंद्रप्रस्थे निषेधिनः।।
ऋहते त्वम् तमसः पूर्ण न वयं विजयामहे।
इंद्रेमच प्रवृणुमो यद् राजानं भवादृशम्।।”

अनुवाद । इस भारत की शतुओं से रक्षा करो, सबकी रक्षा करते हुए धर्म के
मार्ग पर हमें रखो। हे वज्र के स्वामी, बलवान! पाजुचजन्य! प्रजापति!
कल्याणी के स्वामी सुंदर छत्रधारण करने वाले! इंद्रप्रस्थ (दिल्ली) में
रहने वाले आप जैसे राजा को इंद्र के समान हम वरण करते हैं।

आशिषः (आशीर्वाद)

श्लोक । “विपदापूरणात्सकलनस्मानु त्वताताम्बा यदि नात्रास्यत्।
कयं शान्ति: कव खलु समृद्धि? कव च विद्याप्रसरोत्सवमविष्यत।?
शतमिह जीवः शरस्तां राजन्। स्युः प्रतिशरदं शतामपिमासा:।।
मासे मासे शतदिवसी स्याद् दिवसे दिवसे यामशतानि।।
यामे यामे भारतभूमिप त्वदुपजं सुखदा विध्यः: स्युः।
भूयाद येनाहर्षितिभासा तर्पणधीनस्तव जयघोषः।।
स्वराज्यमस्तु वा भूमं भूतं त्वकीर्त: सम्प्रसारणम्।
शाब्दिका वयमीमार्तातदादी सम्प्रसारणम्।।
धुवो राजा विषां भूया धुवकीर्तिःपुर्वोदयः।
इत्याशिषः सम्यक्ते श्रीचन्द्रधरशर्मणा।।”
अनुवाद — विपत्ति से धिरे हम भारतीयों के यदि आप माता–पिता जैसे नहीं होते
तो कैसे वह शांति, क्यूंकि यह समृद्धि और विद्या का प्रसार कैसे हुआ
होता? हे राजन! सैकड़ों वर्ष आप जीवित रहें। प्रति शादू (वर्ष) में
सैकड़ों महीने हों। प्रति मासों में सैकड़ों दिन हों। प्रतिदिन सैकड़ों
याम (टीन घंटे का समय मान) हों। प्रत्येक याम में तुम्हारे लिए
उपयुक्त और सुखद विधान हों। इस भारत भूमि में तुम्हारे प्रत्येक
मार्ग में सूर्य प्रकाशित हो एवं जयघोष होगे। शब्दों से हम लोग यह
प्रचार करते हैं कि स्वराज्य मिले अथवा न मिले परंतु तुम्हारे कीर्तिन
का प्रसार होगे। तुम राजा धूम जैसे वीर, यशस्वी, उन्नति कर्त्ता होओ,
यही श्रीचंद्रधर शर्मा आशीर्वाद दे रहे हैं।

राजरेजेश्वर का स्वागत

श्लोक — “स्वागतं ते महीपाल! दिष्ट्या राजेन्द्र! वर्धसे।
भवन्तमच्येष्याम आस्तां साधु भवानिह ।”

अनुवाद — हे राजा आपका स्वागत है, आप भायं दे समृद्धि प्राप्त करें। हम आपकी अर्थन करते हैं आप यहाँ अच्छी तरह रहें।

विष्ट्र: (आसन)

श्लोक — “अर्थ्यथस्वधसो प्रथमाय तेष्वरन्
प्रियाय राज्ञा गृहमागताय।
शस्यायुक्ता स्वादुजला फलाद्या
भूरस्ती विष्टरातमुपैयु ।”

176
अनुवाद — आप जैसे पूज्य प्रिय घर में प्रथम बार आये हुए को छः ऋतुओं के अर्थ से, फसलों से युक्त सुखबाद जल वाली, फलों से युक्त भारत भूमि पर आसन प्रदान करते हैं।

प्रायम (पाद्य)

श्लोक — “रत्नाभोधिथिः प्लवस्तीपर्वातवतं
वाष्पारिसः कामगेनरूपदिमः।
लक्ष्यास्तात: सर्ववारापतिस्ते
पाद्यायासी कवितात राजराज।
मुक्ताहरिैर्मन्दशीतेस्तरडः।
भृदीयांसी तव नेनेक्तु पादी॥”

अनुवाद — राजन्द्र! तुमने जिस रत्नों के भंडार समुद्र को जलायन से पार किया है, वही लक्ष्मी के पिता, सभी समुद्रों के स्वामी तुम्हारे पाद की व्यवस्था करें। मोतियों के हार के समान शीतल लहरों से तुम्हारे पैरों को आर्द्र करें।

अर्थ: (अर्थ)

श्लोक — “महस्यान्यायाद ये विनाश भजन्त॥
स्तवत्सामार्गस्य लेभंिे प्राणरक्षाम्।
हर्षोऽभासाः प्रमेविष्कारितांक्षां
तेषां मोदाश्रूणि तेडवर्धि भवन्तु॥”

अनुवाद — महस्यायाद जो विनाश को प्राप्त हो रहें थे, वे तुम्हारे साम्राज्य में प्राण रक्षा पाये। उन हर्षित प्रेम से विष्कारित नेत्रों वालों के आनंद के अश्रु तुम्हारे लिए अर्थ होते।

177
आचमनीयम् (आचमनीय)

श्लोक - “विदिषु दिशु प्रसृतं प्रजापतिनसम्भवम्
उपस्पृश यशं: स्वतं वियुदगड़ियेव पावनम्” ॥

अनुवाद - दिशाओं–दिशाओं में फैले हुए प्रजापतिन से उत्पन्न तुम अपनी
यश–रूपी आकाशगंगा को प्राप्त करो।

मधुपकर्मः (मधुपकर्म)

श्लोक - “एकच्छत्रे महिमा यस्तच्छत्रीकं
चितोहरमहेश्वरीस्वरदिन्यथा मधु ।
संपृच्यस्व मधुना तेन नो मुदा ॥
पितामहा तव तत्तेन च तवया
पुण्यश्लोकेऽर्जुनश्चान्ते: शुभंकरम्
वृष्टं, तन्न: सुखपोषानपूपुषत्
पुनर्वव मधुं भक्तरसोष्ट च।
स्वच्छे कंसे निहितं नो हदो मुदु–
देवीयुतो मधुपकर्म जुपस्व तत् ॥”

अनुवाद - हे राजा! आपकी जो एकच्छद शासन की महिमा हमारे हदय में
आनन्द रूपी मधु बनकर तुम्हें मधुपकर्म के रूप में समर्पित हो रही है,
तुम उससे हमें भी आनन्दित करो। तुम्हारे पितामह, तुम्हारे पिता और
tumhare द्वारा यश शांति और शुभ कार्यरूपी मधु की वृष्टि करके सुख
और पुष्टि प्रदान की गई, वही नवीन भक्ति रस से युक्त स्वच्छ
katorere में रखा हुआ आनन्द का मधुपकर्म देवी आपको प्रदान करें।
गौ: (गाय)

श्लोक – “कीर्तिप्रसूं कामदुधामनागसं
सत्यं प्रियं मड़.गलमातं शुभाम्।
गां भारती हर्षरवः सुपुष्पितां
सामुत्सृजामो जयरमणाय ते॥”

अनुवाद – कीर्तिरूपी बछड़े वाली कामदेवनूं में श्रेष्ठ, सत्य, प्रिय और शुभ
tथा मंगलों की माता हर्ष स्वरं वाली पुष्पित सरस्वती रूपी गाय को
तुम्हारे जयकाररूपी संभण (संभाने) के लिए दे रहे हैं।

आशिषः (आशीर्वाद)

श्लोक – “रक्तयेव निजमहिन्या लोकभरण्या च ह्रदयरोहिण्या।
अनुराधितया सर्वंदयार्द्या ज्येष्ठया पुनर्वसवा॥।
समवेतो भद्रपदप्रकाशया चंद्रयन् प्रजास्वान्तम्।
नक्ष्त्रेश्विनेऽभारतभूपेष्टिष्ठ सामराज्यम्॥।”

अनुवाद – शक्तिरूपी रानी के साथ संसार का कल्याण करने के लिए ह्रदयरूपी
रोहिणी (नक्षत्र) से प्रतन्ता रूपी अनुराधा (नक्षत्र) से, सबके दयारूपी
आद्रा (नक्षत्र) से, ज्येष्ठा से, फरवश पुनवस्रं के साथ भद्रपदा (नक्षत्र)
के प्रकाश से प्रजाओं के ह्रदय को प्रकाशित करके नक्षत्रों में चंद्रमा
के समान भारत के राजाओं के बीच साम्राज्य पर आसीन हो।

पञ्चनदेशस्तव: (तुम्हारा पंचनाद देश)

श्लोक – “हिमवन्मुकुटायाय सिन्धुलौष्टिवाससे।
रत्नाकरान्तियाय तस्मै देशाल्मने नमः
काशीरचर्चिताशिरा रांजंकवृषीष्मणित्।”

179
सोजनर्मुक्तपादार्थः सिंहलेन सदार्धितः।
घृतलोहाड़: गलित्राणो दक्षिणः परस्रहः।
पञ्चशाख इवभांति तस्य पञ्चाम्बुसंजितः।
सुस्त्रौतसः किं नु यन्ति पञ्चःन्द्र सरस्वतीम्।
आहो सरस्वतीदेशः पञ्चेघामभवत् सरितः।
इति ब्राम यत्नसो ऋषिमन्त्रकः पुरा।
रसायनः रसस्यास्य समृद्धिवर्णनातिगा।
इतो राजवन्ति भूमिलः राजवति धरा।
इतः पञ्चःन्द्रो देश उतः प्राणहरो मरुः।
यत्र द्राक्षेषुगोधुमशालद्ये पीवः वृषः।
दयते कण्टकीवद्धृतः धन्वक्रमेलकम्।”

अनुवाद ।-
हिमालयरुपी मुकुटवाले समुद्ररुपी कवच (वस्त्र वाले) सेना वाले देश को नमस्कार है। कश्मीर के द्वारा पृजित झिर वाले, मध्यदेश रुपी पगड़ी को पहने हुए विना अर्थ और पाद के, सिंहल देश से सदा पृजित लोहे के अंगुलीक्षक कवच को धारण किए हुए कलिंग रुपी रंगों का विनाशक, दक्षिण देश वाले सिंह के समान सुशोभित पंजाब नाम वाले, सुंदर प्रवाह वाली पांच नदियाँ सरस्वती में जाती हैं। वे ही नदिया सरस्वती के देश में पांच नामों वाली हो जाती हैं। जहाँ पहले मंत्रद्रूष्टा ऋषिः भ्रमण करते थे। रसों की खान इस पृथ्वी का वर्णन और इसकी समृद्धि का वर्णन नहीं किया जा सकता है।
इधर राजाओं से युक्त भूमि है उधर राजपूतां वाली पृथ्वी है। इधर पंजाब वर्तमान है उधर प्राणों को हरने वाला मुस्तक है। इधर अंगूर, मेहूँ, धन और स्वस्थ्य मोटे बैलों वाला पंजाब है उधर प्यासा ऊँट है।
श्लोक  –  "पुर: कृतो हिमवता गंगया च प्रदक्षिणाम्
कुरुक्षेत्रे तीर्थन मानेनालोकसमारः
पञ्चाभी: सिन्धुपाषांपरिवर्तित:।
पारम्भविषालसङ्के बहुनागन्तुकान्य:।
ग्रीकान् पर्शन् पर्शवकांस्च शकान् हृणान् क्रमागतान्।
धन्य:चुल्कयांके सागर: कुम्भजो यथा।
एतानिनशनेमुनिन बाहलीकान् गुर्जरानिप।
आवास्यद वर्णमेताध्यक्षै: स्वहूमिषु।
दुर्ज्जानौपेतान्व राजतत्वमपोद्यान।
रसाह्द्य: स्यात्पात्यनत्यात्मच्छेत सुर्ज्जानौ।"

अनुवाद  –  पहले हिमालय और गंगा के द्वारा प्रदक्षिणा किया गया और कुरुक्षेत्र तीर्थ के द्वारा इसका समाप्त बढ़ाया गया। पाँच बड़ी नदियों और छः नदियों से प्राप्ति, अपने को तथा आगंतुकों को पवित्र कर रहा हैं 
याँधिक, यूनानियों, कुषाणों, शाकों, हृणों तथा क्रमपूर्वक अन्य सभी 
आक्रांतों को उसी प्रकार निगल गया जिस प्रकार अगस्त्य ऋषि 
समुद्र को चुरूवें से भी गए। इसने शांत, पवित्र गुर्जर एवं बाहलीकों 
को जातिमें समाप्त करके अपनी भूमि पर बसाया। बुरे रंग वाले 
राजस्थान के योग्य नहीं रहे उनके इस सरस प्रदेश ने आर्थिक युक्त 
सुंदर वर्ण का बना दिया।

अथात् आक्रांतों को झेल सकने की शक्ति इस प्रदेश को 
स्वाभाविक: प्राप्त है। प्राकारांतर से यह स्पष्ट होता है कि जो भूमि 
पिछले आक्रांतों को जिस रूप में निगल गई उसने अन्याय बदरित 
नहीं किया वह तुम्हारे द्वारा किये जा रहे अन्याय को भी बदरित नहीं 
करेगी अथात् इसके अगले शिकार तुम ही हों। तुम भी राजस्थान से
हीन हो अतः तुम्हें भी अगस्त के वंशज समुद्र के जल की भांति सोख लेंगे।

(टिप्पणी) – द्विवेदीयुगीन इतिवृत्ताचकता में सूक्ष्मता के साथ कवि ने अपनी भूमि की महत्ता का विशेषण करते हुए तत्त्वुगीन राजस्वता को चुनाती ही है।

श्लोक – “उपद्वरे गिरीणां च नदीनामपि संगमे।
यत्र विप्रा अजायन्त बहयो वेदपारंगाः।
पृथ्वीं पर्यतन्तस्ते नवत्वेषणाहि।
दूरादुरत्तरं गत्वाम्प्रथमं जनामिभुवम्।
यदि देवादृ विपत्काचित्तपरतोभिद्वृवम तान्।
चक्रुः साहायकं हर्षानिघोषपि किमु मानवा?:
धर्मं धनमाहाय र्मभृमिषु विक्षये।
दस्युभि: संदुर्तायारात् स्तुवते कृपये पुरा।
सुगाधा: सुतरा भूत्वा नदयस्ता लेभिरेयशः।”

अनुवाद – जहाँ पर्वतों की उपत्यकाओं में और नदियों के संगम पर बहुत से वेदों में पारंगत विप्र उपन्न हुए, जो पृथ्वी पर पर्यटन करते हुए नवीन तत्त्वों की खोज की इच्छा वाले दूर से दूर जाकर इस पृथ्वी को प्रसिद्ध किए, यदि देव वश कोई आपत्ति आई तो नदियाँ भी उनकी सहायता हुई, मानव की क्या बात, वे तो सहायक थे ही।

यहाँ के निवासी धर्मपूर्वक धन कमाकर अपनी भूमि पर निवास करते रहे, पहले दस्युओं और शत्रुओं पर भी उनकी सहायता रही।
श्लोक   –  "प्रतुस्तुवर्यदा सत्र शरस्त्वास्तटे पुरा।
दृष्टवा कवः मैलूषा मृष्यस्त्र कुकूदु।
‘दास्या: पुत्र: कितावो मध्येमहेडीक्षित न कथम्।
श्रोत्रियाणां कुलवता’ मिति तंछाःक्रुणान मुहः।
पाणिपादमथो बद्ध्रा निर्जले निस्तृपे मरस।
अशानाया – पिपासायां मरणायेव तत्थ्यु।
झानेन्द्रतेजा: कवः, कर्मणा न तू जन्मना।
ऋणीमूलो जगो मंत्र नवं बद्धर्पि मोक्षाय।
सर्वस्वती नन्दी त्वेनं न विस्मार गीण्यतिम्।
क्रीकृत्र्प्रववाहायि ग्यावत्कं तमुपःप्रवरवत्।
धर्मत्वचन्द्रानाना दृष्टान्ते जातिमानिनः।
व्यापस्य दृष्टवयोऽभ्यते तितमीश्वः परं।
तिडःगामात्र न धार्म्येवति निषिद्धकुशुर्जनास्तदा।
प्रेम्या परिस्वरेण्न यत्र लोकविगहितम्।
नन्दी तत्स्तित्वद्यापि गीयते परिसारकम्।
अपरेषां ऋणीणां क दुभिक्षे जीवनं विना।
मतिर्भ्राम वेदान्ते देशान्तेषु तथा गति।
कालेन त्वाहः प्रसन्नानजला ये मृत्योरवशिष्थिरेः।
नाशिताचार्येदास्ते प्रत्याजगमुस्व निजाम्।
तद्भ्य: सारस्वतो धीमान् शिशुराडी.गरस: ककिः।
मातुस्तीववसस्य: नन्दं वेदं पुनर्दो।
द्वीपेऽज्ञानं श्रेष्ठं प्रतिपादयत: शिष्योः।
वंशजा द्विविधा विप्रमुर्धन्यापि संरिद्धता:।"
अनुवाद – वहाँ कवष और शैलूम नाम के ऋषिगण सरस्वती नदी के तट पर जब यज्ञ का सत्र करते थे तो दासियों के पुत्र भी दीक्षित हो जाते थे। फिर वे कुलीन ब्राह्मणों पर दीर्घ–दीर्घ आक्रोशित होने लगे और जलहीन मरुस्थल में हाथ पेर बाढ़कर बिना भोजन, के प्यासे मरने के लिए छोड़ दिए। ये कवष ज्ञान के धनी थे वे केवल जन्मना नहीं बल्कि कर्मणा तेजस्वी थे। ये मोक्ष की बुद्धि वाले ऋषिबनकर नये मंत्रों के दर्शक हुए वे सरस्वती नदी जिसे ग्रीष्मकाल में भी प्रवाह के अतिरिक्त होने पर भी अपने तप के द्वारा उसके प्रवाह को जारी रखा। वे जाति पर गर्व रखने वाले धर्म के तत्त्व को जानने वाले, प्रकाशित होकर मोक्ष की इच्छा वाले ज्ञान योग से सिद्ध किए कि धर्म के लिए सिंग का भेद नहीं होना चाहिए। संसार के कल्याण के लिए प्रेम से इसका प्रसार किये वह तीर्थ आज भी कथाओं में प्रसिद्ध है। दूसरे ऋषिबन कुरुक्षेत्र में जन्म न मिलने के कारण शरीर को त्याग दिए और बिना शरीर के उनकी आत्मा देशांतरों में भी पहुँचकर सदाचार और वेदों का ज्ञान प्राप्त करके अपनी भूमि पर पुनः लौट आए और उन्हीं से सारस्वत, बुद्धिमान अंगिरस, शिशु रूप में विद्वान उत्पन्न हुए। ब्राह्मणों में ज्ञान से उत्पन्न श्रेष्ठ शिशुओं के वंशज ज्ञान और जन्म से ब्राह्मणों में श्रेष्ठ आज भी हैं।

श्लोक – “तत्र स्रोतस्वती पुष्पं या विशिष्टं व्यपाशत।
यदेश्यर्यं ज्येष्ठं सपत्ती शतदाब्रवत॥
भुद्वंदुर्वभा रथ्या तामुदगृ भाति पार्वती।
कृपानु सुधोदकान यत्स्थाशिचरं सर्वमार पाणिनिः।”

अनुवाद –
श्लोक —
“तद्द्वित जालंधर पीठं देव्यः स्तनभिमियोनतम्।
सर्वकामपयो धातुं श्रव्यं देवमानवः।।
तापत्रयशामायं यिषुपुष्पः इव राजते।
त्रिगंतौ हिमरोचिष्युः प्रशस्ते भारतालिके।
दुर्योधनसहयोधिपरि सुयोधनपरायणः।
संशारकानां वंशकरः सुशर्म मं पुरात्तशात।
सुशर्माण समारथ्य यावतसंसारचिदिरम्।
वीर्यवन्तः संवरजस्ते त्रिगंतिनुः पर्य्पालयन्।
हन्तं संसारचंद्रस्यानिनिरुद्द्रप्रसंवोधितम्।
सुसमिद्द्रे रणाजितस्तेजस्तेजस्यशाम्यत्।।"

अनुवाद —
“द्राक्षाक्षेरकर्तस्तूरीराधा कवाक्षोष्टसंपदा।
पूर्णः मरकतस्थालीं कर्मीरागुप्तादकायन्।
चषकं वृक्षारमिकं आपूर्य तुहिनानमूलम्।
गिरिगोरीमुरुवन्यो भक्त्या यमुषुतितख्तेः।
बहवः शारदादेशावापसविज्ञानमण्डितः।
कल्यणं जल्हणं मद्यं शार्दुलबिल्हणलोष्टको।
रूचको भामहो नीलं क्षेमेन्द्रोधश जगद्दर।।
जोनराजः सोमदेवं श्रीवरान्दवदहतो।
कैयोटो जैयोटो रत्नकपेड़ा भल्लत रुद्धौ।
लकःको जन्मुकः सम्मुपरुष्ठान्तन्दरांकः कणा।
अलको मम्मतस्तान्ये वश्यवाच उपस्थिततः।
गुप्योक्ष्यायामासु राजानामिव विद्विनः।।"
अनुवाद — अंगूर, केसर, कस्तूरी, अखरोट आदि संपत्तियों से पूर्ण कश्मीरवासियों
के उपयोग योग्य मरकतमणी के पात्र में बर्फ के अमृत वूलर नाम से
प्याले में भरकर पूज्य हिमालय पर्वत पर भक्ति से निवास करते हैं।
बहुत सी सात्तवत देश से ज्ञान विज्ञान को प्राप्त कर, विद्या से
पुष्टमित कल्हण, जलहण, मंख, शंक, विल्हण, लोष्ठक, रूचक, भामह,
नील, क्षेमेंद्र, जगद्वर, जोनराज, सोमदेव, श्रीधर, आनंदवद्वन, कैयट,
जैयर, रत्कण्ड, भल्ला, रुद्रत, लंकक, जेन्दुक, शंभु इच्छटानद,
कण्ण, अलक, ममत आदि अन्य, जिनके वाणी वश में थी, वहाँ
उपस्थित होकर श्लोकों की रचना किए, जिस प्रकार राजा के
सामने बंदीजन गाते हैं।

श्लोक — “अदभुतां भारतारामत्राण पञ्चास्यातां वहन्।
सराजाक्ष्वेदनान दृप्तः परदपीलोपनान्।
यदुर्ज्ञानप्रतिध्वानभिया प्रत्यत्वासिनाम्।
अद्यापि शिथिला नीवेयो न नारीणा, नृणामपि।
यावदश्रूतायास्योऽघोंर गर्जनमानागते।
नगरं घोर—गर्जन्यो म्लेच्छेश्तत्र प्रतिध्विते।
मानुषभूय यादागालान नामुक्तचा पच्चपेतना।
नाविक्षय च यदुदर्च्छ म्लेच्छा भारतामाविशन्।
विधूय तान् सषालगनान् मधकानिव भूरिश।
यत्रत्यो रणजितिसिंहः स्वतन्त्रं प्रत्यपद्यत।
(म्लेच्छब्रह्मसहस्त्राक्ष पर्यन्तनेकदृशा प्रजा)।
य: समधापि नीत्कः शतां नात्यलंघयत्।
उपानात्सीनमिष्टं नेन्त्रे कोहतुरुं रविप्रभम।
यं भ्राजिष्णुतमं धते मुकुटे भारतेश्वरी।
दशानां गुरुवीराणां शिष्यसिंहेंस्तन्त्रतत्त्वते।।
अभाजि किंतु नामाजिक कष्टो मुगलपञ्चरः।
शान्त्यालवाले बृटिशी रोपित राष्ट्रपादपम्।
आयातावुदयच्छायं समुन्नतिफलप्रहिम।।
उत्सिपाटथिषु झाल्या कालविनिवारणम्।
ये निम्नुर्भूजदेहल्यां हेया स्मृतिशोषताम्।
अन्तर्भंदानिशुम्भकाणी जात्यशुम्भविमाधिनीम्।
चित्रत वहन्ति हृष्णतः शकितं कामपि ते पराम्।”

अनुवाद —
अद्भुत भारतरूपी उपवन की रक्षा में सिंह के रूप में शख्सों के मद
को चूर्ण करने वाले अपने आँखों से घूरे हुए, अपने गर्जन की
प्रतिध्वनि से किनारे रहने वाली स्त्रियों की ही नहीं अपितु पुरुषों की
भी करधनी ठीक हो जाती थी। जब तक इसके भयंकर एवं तेज
गर्जन को सुनकर आक्रामक रूप में आने वाले गोरी और गजनी (घोर
गर्जन) नामक दोनों म्लेच्छ के रूप में प्रतिष्ठित थे, बिना उसके
आधारों को अनुभव करके और उसके चपेटों को बिना खाए उनके
दांतों एवं दाढ़ों के चोट को बिना साहे ये म्लेच्छ भारत में घुस आए।
रणजीत सिंह ने दस्त्रों में घुसे हुए मच्छरों के समान, अनेकों बार
उनको मसलकर स्वतंत्रता को प्राप्त किया। म्लेच्छरूपी वृद्धासुर का
ईंद्र के समान बध करके प्रजा को समानता से देखते हुए जो समर्थ
होते हुए भी नीति के क्षेत्र वाले अर्थात नीतिज्ञ सतलज नदी को नहीं
लांघे। सूर्य सदृश प्रकाश वाली कोहिनूर भणि को लाए और भारत
देवी भाजमान मुकुट में लगाए। सिक्क धर्म के दसों गुरुओं को वीर
आलस्यहीन शिष्यों ने मुगलरूपी पिंजरे से तोड़ दिया और परतंत्रता
के कष्ट को नहीं झेले। अंग्रजों के द्वारा शाति के थाले में राष्ट्र का
वृक्ष रोपा गया। उसके छाया और फल देने का समय आया तो
उसके ग्रहण करने वाले भी आ गए। विद्रोह के समय विद्रोह रूपी
हाथी उसको उखाड़ने के लिए आ पहुंचा। झान जो अपनी स्मृति को
शेष रखने के लिए अपने द्वार पर लाया। अंतर्गत रूपी निर्णय देत्य को मारने वाली, मूर्खतारूपी शुभ्म का मर्दन करने वाली, वे किसी पराशक्ति को आशचर्य एवं प्रसनन्ता से धारण करते हैं।

श्लोक —

"नदीमातृकतां निन्ये शक्त्रो यं देवमातृकम।
कुल्याभिमन्तस्य पर्यन्ता बृहतिचिरवर्षोक्तात्।
तदाभिजनो जन एष कीर्तिगीतां
जनपदमौलिमपणेऽसिम्प्यासीत्।
भवति सदा सुखदो महोदयानं।
गुणगरिमा पठितं: श्रुतं: स्मृतो वा।"

अनुवाद —

इन्द्र के द्वारा हुई वर्षा के ऊपर निर्माण रहकर कृषि करने वाले किसानों के लिए नदियों से सिंचाई के लिए, भूमि को उपजाऊ बनाने के लिए नहरों को अंग्रजों ने बनाया। इस ख्यात जन के यह कीर्तिरूपी गीत जनपद के शिर के मणि के लिए (श्रेष्ठ पुरुष के लिए) यह कुछ भी नहीं था। उस महोदय के गुण की श्रेष्ठता को पढ़ना सुनना और स्मरण करना सब सुखद होता है।

ग्रीष्म: (ग्रीष्म)

श्लोक —

"प्रस्वेदाप्लुतामानं जलपदीयोऽः समुत्पुर्णतः
कलातैवीद्विवर्तयते निर्विश्रवं वार्जनम।
सन्तापोपूर्णाशंसेशेष इव मे नायति निःशेषतां
शास्ति: कामिनिधीरतेव न मनाक् रविनेशपिसमभाव्यते॥।।।।"

अनुवाद —

परस्पर ने से युक्त मुख जो जलयुक्त वस्त्र के द्वारा पोछा जा रहा है।
थके हुए बाह्रों से लगातार पखे (विअन) चलाए जा रहे हैं। गर्मी का
श्लोक  —  "धूलीतापो नयनपटलं तर्भतापस्य कण्ठः
स्थयातापशचरण्युगलं भानुतापोऽपि शीर्षम्।
परिवर्तनं घनिष्ठ नित्यं तपति जननापेशः पञ्चारिणिः।" ।।2।।

अनुवाद  —  नेत्रों में गर्म धूली पड़ने से, गले में ध्वस्का का कष्ट भोगने से, मार्ग में
दोनों गंधों के जलने से, सिर पर सूर्य की धूप सहने से और सभी
अंगों में बहती हुई लू (गर्म हवा) का ताप लगने से यह जनता नित्या
पंचारिणि में जलती है अर्थात् कष्ट प्राप्त करती है।

श्लोक  —  "दिननायक—खरदशशतकरकरटकृष्णमाणसारोयम्।
राज्योपि हन्त! लोको न किमप्याप्यनं लभते।।" ।।3।।

अनुवाद  —  सूर्य की प्रचण्ड हजारों किरणों से तपत होकर दुखी इस संसार में
दुख की बात है यदि वह राजा के द्वारा जल की व्यवस्था नहीं प्राप्त
करता है।

श्लोक  —  "कोणेन नित्यिन मृत्तं दिवसं समाप्य
दीर्घिषु शापि,कतपदं रजनीम् भ्रमामः।
सम्मद्वते भजयुऽविजने श्यामः
कालेन चित्रमिह चौरसमा: कृतः स्।।" ।।4।।
अनुवाद – सूर्य की प्रवचन धूप के कारण कोने में छिपकर दिन को बिताकर, डरे हुए चुपके से गालियों में हम लोग घूमते हैं, भयभीत होकर दुख से निर्जन में सोते हैं। समय के कारण आश्चर्य है हम लोग चोर के समान बना दिए गए हैं।

संस्कृत रत्नाकर

सामान्यक समासोक्तयः

श्लोक – “जयति करजराजिर्दनवेन्द्रस्य वक्षो
नलिनदलविदारं दारयन्ती मुरारे।
धनजनबलदर्पि धर्मभागादिपेत
प्रभवति नहि पातु या लिलेवेति सत्यम्।।” ।।।

अनुवाद – दानवों के राजा (हिरण्यकश्यप) के वक्षस्थल को कमलदल के समान विदीर्ण करने वाले विष्णु भगवान के नाखूनों की जय हो। धन, शक्ति, बल (जनबल) के धमण्ड से धर्म के मार्ग को छोड़ने वाले कोई रक्षा नहीं कर सकता है। यह सत्य ही लिखा हुआ है।

श्लोक – “विविधविवुभुतेजः पुज्जपुज्जजीकृतांगाः
तदुपचितमहारत्रस्तोमदुर्धरः मूर्तिः।
जयतिरचिताः कापि शक्तिः परा द्राक्षे
शमयति महिषं या स्माराणिनिष्कातमेव।।” ।।।

अनुवाद – अनेक देवताओं के तेजपुंज से जिसका देवदीयमान शरीर निर्मित हुआ। वह अत्यंत सूंदर एवं भयंकर मूर्ति के रूप में हो गया। हास्यमान मुखमुद्रा वाली कोई पराशक्ति है जो अद्भु निफ्रांत महिषासुर को मार डाली।

190
श्लोक - "दशशतमुज्युगमाकृष्टशस्त्रं प्रमतां
विशिष्टविशाखं यो व्यघातः कार्त्तिकेर्म्।
निसिदपरशुधारास्तनानिधूर्ततपां
जयति शिवविनीतो जामदम्यो महात्मा।।
13।।

अनुवाद - अपनी उजारें भुजा में शस्त्र धारण किए हुए मतवाले अवध्य सहस्त्रार्जुन (कार्त्तिकेर्म) को जो मार डाले। फरसे की तेज धारा में स्नान करने से जिसका पाप धुल गया। शिवजी के प्रति समर्पित भक्ति वाले महात्मा वरशुराम की जय हो।

श्लोक - "दनुजदलनदीकाशस्पततत्ती मधोनो
भुवनवलयजेताध्वरं यशवकार।
रविवशिकूलभूतो भारताधीशवराणा
जयति पुरुषहिम्मां कश्त्रियाणा स वंशं।।
14।।

अनुवाद - दानवों को मारने की दीक्षा प्राप्त किए हुए गांधीव धनुष धारण करने वाले अर्जुन जिसने सपूर्ण पृथ्वी को जीतकर वलय के समान बना दिया। सूर्य और चंद्र वंश में उत्पन्न होने वाले भारत के राजा लोगों की और पुरु के वंश में उत्पन्न क्षत्रियों की जय हो।

श्लोक - "निकटजनपदेकागारिक सन्धिमेद –
प्रकटितनिज्वृत्तं या निजव्राह तूर्णम्।
जलनिधिमहि वेलाभंगविभीविताः
जयति तदगरीरीणामावलीदुर्प्रवृद्ध।।
15।।
अनुवाद - नगर के निकट जो शान्त भाव से रहने वाले, काटने पर भी जो अपना दुख (समाचार) नहीं प्रकट करते। समुद्र की लहरों से जोट खाते हुए किनारे के बढ़े हुए वृक्षों की जय हो।

प्रथम प्रकाशन - संस्कृत स्तन्यकर

श्लोक - “धर्मं यतो जगद्धीशः! ततः सदात्मं
भूतिज्ञायशच नियतं हि ततो यतस्तः
धर्मै युद्धयति चमूर्त्वजार्ज्ञः भक्ता
तस्ये जयं परमकारुणिक! प्रयच्छ।”।।2।।

अनुवाद - हे संसार के स्वामी। जहाँ से धर्म है वहाँ सदा तुम हो। जहाँ तुम हो वहाँ ऐश्वर्य एवं विजय निरिच्छत हैं। राजा और भक्त जार्ज धर्म के लिए युद्ध करते हैं, अतः हे परम् दयालु उनको विजयी बनाओ।

श्लोक - “जितवरिपृृज्ञगति शान्तिसुखं वितन्वन
संघोषितो जयरैवैनिजवाहिनीभि:
साम्राज्यपालनमकण्टकमादधानो
जीण्याचिरं नरपरिव्रतः प्रसादद्।।”।।2।।

अनुवाद - शत्रुओं को जीतकर संसार में सुख और शांति को फैलाते हुए, अपनी सेना विजय के घोष से धनित, निष्कंक अपने साम्राज्य का पालन करने वाली आपकी कृपा से चिंत्रजीवी हो।

प्रथम प्रकाशन : पाटलीपुत्र 31 अक्टूबर, 1914 ई।

“विद्यामृण पं. हरिनारायण पुरोहित के नाम पत्र”

“श्री:
समुदितं तिमिरस्य निवारण।
भयभयापह - शर्म - सुसूचकम्।

बहुविंभं जितसर्वकलाधरं
'हरि' मिहाय नतिमस्म गच्छतु।।

मित्रोदयः (क) कस्य मनः प्रसादो
न जायते येन जगतसमृदिः।

कलाधरः (ख) पाण्डुरङ्ग दधानो-
प्रस्योदयं संसति त्वानजिनः।।

चंद्रः गुलशेरी

अनुवाद -

जो अंधकार के विनाश के लिए उदित हुए हैं संसार के भय से दूर
करने वाले शर्मा उपाधि वाले हरि जो बहुत वैभव वाले सभी कलाओं
(चंद्र) को जीत लेने वाले उनको आज मेरा प्रणाम है। मित्र (सूर्य,
हरि) के पाण्डुरङ्ग (पीलेपन) के कारण संसार (लोग) उनके उदय का
अनुमान लगाते हैं।

चंद्रः गुलशेरी

प्र. अनंतराम मिश्र के नाम पत्र

ओश्म् नमः शिवाय्

मेघो कालेज अजमेर, 19.2.1916

"श्रीश्री पितृव्यचरणेशभिवादः श्री ज्ञेष्टाटस्य पत्ये च। कुशलमत्र
सर्विधं तत्र कुर्याच्छीपरस्मुद्धिमहा। पत्रं नस्यं च श्रीवशीर्षरशम्यं
हारा समस्तिं। अत्र साज्जलविभिमि विज्ञापयामि बालचापलं क्षत्वम्।
यदा यदा भया नस्यं पितृष्टसुः कृतेयाविंतं तदा तदा श्रीमदिः
प्रहितम्। यदा यदा च मया तत्रभवतो मूलं पृष्टं तदा तदिदमेवोतरिं
यत् यथा पितृष्टसा तव माननीया तथेवासाक्ष्मित्। अहनमया
व्यवस्थया कमयि भेंद न मन्यमानसुष्ट्य एवासम्। परंतु
ज्ञेष्ट-तात-पत्या कथा-प्रसंगे बदेद्विश्विवारं श्राविता
श्री पितृव्य (वाचाच) के चरणों में तथा बड़े पिता की पत्नी के चरणों में मेरा अभिवादन। यहाँ सब तरह से कुशल है वहाँ श्री प्ररम्भु की कृपा कुशलता प्रदान करे। पत्रसुध्दनी श्री वंशीधर शर्मा द्वारा प्राप्त हुआ। यहाँ में अंजलि बांधकर यह बता रहा हूँ कि मेरी बाल चंचलता को क्षमा कीजिए। मेरे द्वारा जब-जब बुआ के लिए सूंघनी मांगा गया तब-तब आपने दिया। जब-जब मैंने उसका मूल्या पूछा तब-तब आपने उसका यही उत्तर दिया कि जैसे बुआ तुम्हारी माननीय है वैसे ही हमारी भी है। मैं इस व्यक्ति से किसी प्रकार का भेद नहीं मानता हुआ संतुष्ट था, परंतु बड़े पिताजी की पत्नी बातों ही बातों में कथाप्रसंग द्वारा दो-तीन बार सुनाई कि पन्त्ह मुद्रा की सूंघनी गई है तो उसके न सहने के कारण मैं जाना कि आपका आशय दूसरा और बड़े पिताजी की पत्नी का दूसरा है। आप संकोच में उचित विचार करते हैं लेकिन वह वैसा नहीं। आप मेरे कारण व्यर्थ ही बड़े पिताजी की दृष्टि में गिरें। सब गोपनीय है, पैसा भेज दिया गया यह बात आपके कानों तक ही रहे। बड़ी मंद ज्वार और खून की कमी से अपच से ग्रस्त होकर काले ज्वार से भी ग्रस्त हैं। न जाने यह कर्म का कैसा भोग है। एक ही दुख है ऐसा स्मरण करता हूँ।

सर्वथा विधेय, चंद्रधर शर्मा
पं. रामकुमार मिश्र (जससरापुर खेतड़ी) के नाम पत्र
अजयमेलू, 10.06.1920

कथ्य
श्रील रामकुमाररेख्यो नतयः पत्रमागतम्
ओझाजिनः प्रसीदन्ति: वयं च सकुटुम्बकः।।।।

अनुवाद
- श्री रामकुमार आदि सभी लोगों को प्रणाम। पत्र प्राप्त हुआ। ओझाजी सहित हम सभी परिवार के लोग आनन्द से हैं।

कथ्य
गतं न शोच्यं यद्वर्तमानावस्था फलावहा
न भूयाचिछक्षणे यातस्यापि में जयपतने।।।।

अनुवाद
- बीते समय को न याद करें। वर्तमान अवस्था फल देने वाली है। जयपुर जाने पर भी मेरी शिक्षा पूरी नहीं हुई।

कथ्य
स्वातंत्र्यं खेदराहित्यमचित्तां स्थिरतां सुखम्,
संगं ओझाजिनां सर्वं कथं जहं दुराशया।।।।

अनुवाद
- स्वतंत्रता दुःखरहित, चिन्तारहित, स्थिर सुखदेने वाली है, ओझाजी के साथ दुराशा में मैं कैसे रहूँ।

कथ्य
कथं न स समायाति सदरो नृहः परम्,
प्रथमा मुद्रिता संख्या ब्रह्मिया मुद्रायतेःथुथा।।।।

अनुवाद
- यह प्रधान सिंह (शेर) क्यों नहीं आया। पहली संख्या छप गई है और दूसरी अब छप रही है।

कथ्य
प्रतिश्रुत्यं न चापाति यस्तं मा स्मर पिड़िते।
वाजिनं वा पुनः श्वानं कुतः कामसंस्योता।।।।
अनुवाद — यदि सुनकर नहीं आ रहा है तो ऐ वेश्वा तुम उसको समरण मत करो। इस समय तुम घोड़ा अथवा कुत्ता किससे चाहते हो।

कथ्य — उरोजपीडन स्वीपमेव किंते मुदावहम,
परंतु भोगराहित्ये न सोभायं भवादूःशाम्।। 16।।

अनुवाद — मैं अपने द्वारा तुम्हारे वक्त (हदय) स्पर्श का सुख कैसे प्राप्त करूँ।
लेकिन आप जैसा भोग से सहित सोभायं नहीं है।

कथ्य — जा (झा) वर्तु मया गच्छन् दृष्ट:, पत्रं समागतम्
मिश्रा: श्रुता गमिष्यतो, गता इत्येव बुद्धयते।। 17।।

अनुवाद — जाती के साथ मेरे जाने पर पत्र आया दिखा। जाते हुए मिश्रा लोगों
ने सुना और यहाँ से जानकर गए।

कथ्य — लेखान्तरं भवान् किंचिदं वितरितिवित् नाजङ्ख्यते,
जनोऽयं येन तार्त्त्यमंकं संपूर्णयेत् खलु।। 18।।

अनुवाद — दूसरा पत्र आप देना चाहते है तो यह मनुष्य जा रहा है उस अंक
को पूर्ण कीजिए।

कथ्य — पत्रं प्रेष्यं सुखं झाप्यमाझाप्यं करणीयकम्,
सदांवाराच्च कौलस्त्रीयोग्याधिच्चायच्यमत्र च।। 19।।

श्री चंद्रधर शर्मा:

अनुवाद — पत्र भेजकर सुख जानकर करने योग्य कार्य की आज्ञा देकर और
सदाचार जो कुल की स्थितियों के योग्य हो, उसे यहाँ सुनाइए।

श्रीचंद्रधर शर्मा
रश्या — स्वदेशीय व्यवस्था: सुभाषित
(स्वदेश की व्यवस्था — शुभ वचन)

रश्या — उत्तरें वस्त्रमधिं न तायुमनु क्रोशनति क्षितयो भरेषु।
नीचापमान जसुरि न श्रेयं श्रवश्चाच्छापुसुमच्च यूथम॥
(ऋग्वेद 1.3.3.8.5)

अनुवाद — ऊँचे भवनो में निवास करें, अच्छे वस्त्रों को धारण करें और भूमि के स्वामी हों। नीचे विचार न हो और अशुभ बातों को न सुनें।

रश्या — सर्वपरवशं दुःखं सर्वमात्रामवशं सुखम॥ (मनु:)
सदैवासानात्यागं: शभोपमति शांचितः।
निग्रहो बाह्यवृत्तीनां दम इत्यभिदीयते॥

अनुवाद — परतंत्रता सबसे बड़ा दुःख और स्वतंत्रता सबसे बड़ा सुख है।
(मनु) सदा वासना का त्याग, शब्दों पर नियंत्रण रखना, बाह्य वृत्तियों
को होकर यह दम कहलाता है।

रश्या — विषयेभ्यः पराबृत्ति: परमोपपरिति सा।
सहनं सच्चु:खानां सा शुभा मता॥

अनुवाद — विषयों से विमुख होकर रहना ही वास्तव है। सभी दुःखों
को सहने वाला भाव ही शुभ तितिक्षा कहलाती है।
श्लोक — देख सवकवाक्येषु भक्ति: भ्रद्वजि सा मता।
   चितैकाययं तु सल्लक्ष्ये समाधानानिति स्मृतम्।।

अनुवाद — देश सेवक के वाक्यों में जो भक्ति है वही श्रद्धा कही गई है।
   अच्छे लक्ष्य में चित की एकाग्रता को ही समाधान कहा गया है।

श्लोक — विदेशवस्तुनिमुक्त: कथं मे स्यात्काद विधं।
   इति या सुदृढ़ा बुद्धिवक्तव्या सा मुमुक्षता।।

अनुवाद — हे विधाता, विदेशी वस्तु से मेरी विरक्ति कब होगी। इस दृढ़
   बुद्धि से कहना ही मोक्ष अर्थात् मुक्ति है।

(अपरोक्षानुभूतो, किजिज्ञतपरिवर्त्य)

श्लोक — मुख्यः पुरुषयलोक्तो विचारः स्वाल्मदर्शने
   गोणो वरादिको हेतुमुख्यहेतुपरो भव।।

अनुवाद — पुरुष का मुख्य विचार आत्मदर्शन का होना चाहिए ओर गौण
   कार्य वर्दा आदि का होना चाहिए अतः मुख्य कार्य मे सलगन
   होंगे।

श्लोक — पुरुषवेदुद्धर्त्यज्ञमालीयात्योरुषुद्धाते।
   उष्णं वान्तं वलीवर्वं तत्कस्मानीत्तत्त्वसी॥
   — योगवासिष्ठे

उपानदगृहपादस्य सर्वं चर्मवृत्तेव भूः ॥
   (नीति:)

198
अनुवाद — अपने पौरुष के अभाव में अर्थात् अपने उद्योग न करने पर गुरु अगर मृत्यु का उद्देश्य कर देता तो वह ऊट, दाँत वाले जानवर और बलवान बैल का उद्दार व्ययों नहीं कर देता।

“वात्स्यायनीयकामसूत्रस्तीकायाः जयमद्वायाः कर्तरा
(वात्स्यायनी कामसूत्र टीका का जयमद्वाल करने वाला)”

महामहोपाध्याय गुरुवर श्री पण्डित दुर्गाप्रसादेन संस्कृतं वात्स्यायनमुनोः
कामसूत्रं जयमंलाभिधिया टोकया रह सर्विंगसितं। सा च तत्रापरत्र च
यशोधरकृत्तेति गीतोत। ततद्धायसमातिस्थं पुष्पिकायासात् पयवायसत्य
यशोधरस्य तत्कर्त्तव्यं सन्निधानमानसं एवाम्भवहस्।

सा चित्मका —

श्लोक
“इति श्रीवात्स्यायनीयकामसूत्रस्तीकायाः विद्याधारानारिसाकारमेनु
गुरुदक्तेन्द्रपादाभिधानेन यशोधरेनेकनेकभूतसूत्रभायायाम्।।
अमुकधिकरणेकमुकोधायाः।”

अनुवाद — महामहोपाध्याय गुरुवर श्री पण्डित दुर्गा प्रसाद संस्कृत में
वात्स्यायन मुनि के कामसूत्र का जयमंगला नाम की टीका
की रचना किए। वह टीका जहां तहां यशोधर के द्वारा की
गई है। उसका अध्ययन करने पर पुष्पिका (चिन्हित) जानकर यशोधर की इस
रचना में संदेह हो रहा है। वह इस
प्रकार है —

श्री वात्स्यायन की कामसूत्र की टीका में जयमंगला नाम की टीका में, स्त्री
के विरहाग्नि में जलते हुए दुखी गुरुदत्त नाम से यशोधर ने सूत का भाष्य (टीका)
किया। अमुक प्रसंग में और अमुक अध्यय में—

199
(किं चास्मादवतरणादिदृश्याये यशोधरराजप्रागपि जयमद।
-गलानामूलकसीति, परन्तु टीकागंधः पृथगेव मूलग्रंथां तृताचारीतः।
महाशयेन स्वयं विद्वान्धकोनाविरं यायितुमेव प्रति प्रकरण प्रत्यधिकरण
प्रतिषृंच च टीका मूलानुसारिणी विहिता।) फलापञ्चायस्य कष्टस्य
कर्मण: प्रत्यक्षमेवाभिधगतं, यत्तरः शतेषधव वस्तरेषु यातेषु टीकासमस्तकर्ताः
टीकानिमांतोति प्रासिध्यत।

अनुवाद
- और हमारे द्वारा प्रसंग से यह ज्ञात होता है कि यशोधर से
पहले भी जयमंगला नाम की टीका थी परन्तु टीकागंध मूलग्रंथ से
अलग ही प्रचारित थी। ये महाशय स्वयं स्वविश्वासिन ने जलते हुए
प्रत्येक प्रकरण, प्रसंग और सूत्र की टीका को मूल रूप में किए। इस
कर्म कष्ट के फल को प्रत्यक्ष कर पाये थे कि बाद के सेक्कों वर्षों में
kिए जाने वाले, टीका करने वाले टीका निमाता के रूप में प्रसिद्ध
हुए।

तस्येव कामसूत्रस्य पुनर्मुद्रणे पण्डीतकेदारनाथेन्द्रितमस्याध्यायस्य, प्राक्तने
संस्करणे मूलमात्रमेव मुद्रितस्य टीका, विज्ञनरस्तं कर्मपि
कोषपुस्तकमाश्रित्य समायोजि। तस्याः पुष्पिका “इति सप्तमेवधिकरणे
द्वितीयोऽध्यायः। आदितः षटत्रिशः समप्रत्वकामसूत्रकेदारनाथयाः जयमद।
-ग्नासे-ख्यायम् औपनिषदिकं नाम सप्तममधिकरणम्।” इतिरूपेण ज्ञायति
वदारिया न्यूनान्यूनमेक प्राचीन पुस्तकक यशोधरकर्याः नामाः

अनुवाद
- उसी कामसूत्र के पुनर्मुद्रण में पण्डित केदारनाथ अंतिम अध्याय के
पहले अर्थमेव मूल रूप में मुद्रित टीका विज्ञनरस्तं के किसी
शब्दकोष से सहयोग लेकर की गई। उसकी पुष्पिका (Note) “ऐसा
सातवें अधिकरण में द्वितीय अध्याय आदि से छट्टीस। जयमंगला नाम
औपनिषद समाप्त अधिकरण कामसूत्र टीका में समाप्त।”

200
इस रूप में यह मालूम होता है कि कम से कम यह प्राचीन पुस्तक यशोधर के हाथों नहीं पड़ी।

आगे – पुनर्वचन सूक्ष्मतया जयमंडलगलायं विकास्तयानायं यष्टीकासंस्कृत्यशोधरस्य जीवन धर्मविवेयकं रोचकमुपाख्यानं वर्णयन्त्र इमा: प्रशस्ता: पुष्पिका: प्रत्यध्ययसमाप्रावेव स्फुर्तिः। अर्थ च मूलसूत्रानां विभाग: प्रकरणेष्ठित्वकरणेषु चापि यथेवाध्ययेषु। तेषांज्ञ प्रकरणानां समाप्ता लधी पुष्पिकोपलयंते। या मूलदीकाकृति एव वृत्ति: स्थात। मूलानुसारेणाध्ययायवितः यशोधरः स्वीयं: पुष्पिका आयोजयत। वास्तव उष्टीकाकृत्य प्रकरणान्ते विषयान्तमञ्जरयत, सत्यं प्रकरणधिकरणा विभक्तो पुनर्ध्ययकल्पनामां मन्त्रार्थ एव टीकाकृत्लक्ष्यते यतो नवमपृष्ठ ग्रंथपरिसंख्यायायानासरे च “तमध्ययासंख्यां पूर्वशास्त्रस्म इदं स्तोकसिद्धि दर्शनार्थम्।”

फिर सूक्ष्मता से जयमंडला में की गई टिका जो टीकाकार यशोधर के जीवनी के रोमांचक कथा का वर्णन करती है यह पुष्पिका प्रत्येक अध्यय की समाप्ति पर स्पष्ट होती है। प्रत्येक अध्ययों में, प्रकरणों में मूल सूत्रों का विभाग है। उन प्रकरणों की समाप्ति पर छोटी पुष्पिका प्राप्त होती है। जो मूल टिका करने वाले की कृति है। मूल के अनुसार बिना अध्यय पूर्ण हुए ही विराम पर यशोधर अपनी पुष्पिका दिए हुए हैं। वास्तव में, टीकाकार प्रकरण के अंत में तथा विषय के अंत में बताया प्रकरण के आधार के विभाजन में फिर पाठ के विषय में उदासीनता ही टीकाकार को दिखाई देती है क्योंकि पृष्ठ पर ग्रंथ की गणना और व्याख्या के अवसर पर “अध्यय की गणना पूर्व शास्त्रों से लिया गया यह थोड़ा दर्शनार्थ है।”

प्रकरणधिकरणसंख्यानन्तनिरपेक्षार्थमित्राय तत्र चादितत्वकल्पथ्येः (त एव चत्वारिक प्रकरणानि संस्कृति) न लधी पुष्पिकोपलयंते, केवल बृहस्पती, पञ्चमाध्ययान्ते (स च पंचमप्रकरणस्य प्रथमधिकरणस्य प्राप्ति चान्तः)
केवलमेकसिमनेव पंडित दुर्गाप्रसादः उपर्युक्तो मूलपुस्तकेऽल hari पुष्किकोपलभ्यते या तेः पाठान्तरेणु पादटीका यां ् धृता। परतश प्रतिप्रकरणविरामेऽल hari समाप्ति सूचना, प्रत्यध्यायावसानं च यशोधरस्य विदग्धाद गनाविरहकारतव्यापिका पुष्किकोपलभ्यते। अतो मन्यामहे यदृत्र प्राचीनपुष्किका प्रकरणविरामेऽ सह संवादिष्ठध्यायविरामेष्यसीत् यत्र ततः सा यशोधरणापालसायुत यत्र चायायान्तः – पातित्वात्मकरणानामध्यायानेष्यधिमागाया स्वीय पुष्किकला सह संघर्ष नाभज्जत तत्तत्रायज्जत।

प्रकरण के आधार की गणना अन्यों के द्वारा निरस्पेष है ऐसा कहा गया है। वहां प्रारंभ के चार अध्यायों (वे ही चार प्रकरण हैं) में छोटी सी भी पुष्किका प्राप्त नहीं होती है लेकिन बड़ी ही प्राप्त होती है। पाँचवें अध्याय के अंत में (और वह पाँचवें प्रकरण के प्रथम अधिकरण का भी अंत है) केवल एक में ही पंडित दुर्गाप्रसाद के द्वारा उपर्युक्त मूल पुस्तक में छोटी पुष्किका प्राप्त होती है जो उनके द्वारा पाठान्तरों में पादटीका में रखी गई है। दूसरी तरफ प्रत्येक प्रकरण के विराम में छोटी समाप्ति सूचना एवं प्रत्येक पाठ की समाप्ति पर यशोधर का नाथिका विरहापान में जलते हुए दुर्खी होने के भाव को बतानी वाली पुष्किका प्राप्त होती है अतः हम मानते हैं कि यहाँ प्राचीन पुष्किका प्रकरण के विराम के साथ संवादों में और पाठों के विराम में थी। वहाँ उसके बाद के वह यशोधर के द्वारा प्रसारित की गई, जहाँ पाठ अंत में प्रकरणों के पाठ के अंत में दी गई अपनी पुष्किका के साथ संघर्ष नहीं किए उसे छोड़ दिए।

इदानी त्रिवेन्द्रम् (अनन्तशायन) संस्कृत–ग्रंथावल्यां प्रकरणिता कामदक्षीणिनितसारस्तु टीका शंकराचार्यकृता जयमङ्गलगलेश्वरभिधाना प्रधानिपुष्कमपुस्तापयति। वात्यायनीय कामसूत्रालीकाया: प्रथम पद्मदासम् –

"वात्यायनीयं किल कामसूत्रं प्रसारितं केशिचित्रान्यथेष्व।"
तस्मादिधार्ये जयमंगलाख्यां
टीकामहं सर्वविदं प्रणम्य।।

इस समय त्रिवेन्द्रम् (अनन्तशयन) संस्कृत ग्रंथावली में प्रकाशित कामदकीय नीतिसार की टीका शंकराचार्य द्वारा प्रकाशित की गई है जो जयमंगला नाम से दृष्टिगोचर हुई, दूसराप्रमाण उपस्थित करती है। वात्स्यायनीय कामसूत्र की टीका का प्रथम पद्म है—

में सबको प्रणाम करके किन्हीं लोगों के द्वारा प्रस्तावित वात्स्यायनीय कामसूत्र की जयमंगला नाम की टीका कर रहा हूं।

तुलनीयमनन सह शंकराचार्यकृतात्या: कामदकीयनीतिसारटीकात्या: जयमंगल:गलायाय:
द्वितीय पद्म—

"कामदकीये किल नीतिशास्त्रे
प्रायेण नाट्तमिन् सुगमः पदार्थः।
tसमाधिधार्ये जयमंगल:गलायाय
tतत्पिच्छकां सर्वविदं प्रणम्य।।"

इसके साथ शंकराचार्यकृत कामदकीयनीतिसार की टीका की जयमंगला का द्वितीय पद्म की तुलना करने योग्य है—

"में सबको प्रमाण करके कामदकीय नीतिशास्त्र में जिसमें पदार्थ (शब्दार्थ) सुगम नहीं हैं इसलिए जयमंगला टीका की रचना कर रहा हूं।"

न केवलं टीकयोनमिनीं, आद्योपायाद्वलोकौ च समतां दधतः
पर्यायः शैली कम्यपूर्वो सौसादृशम् भजते। सैव व्याकृतम् विवेचनरीतिः,
स एवोदहरणप्रत्युदाहरणविचार — तकर्षिकरणप्रौढ़िमा, तदेव प्राचीन
केवल टीकाओं के नाम ही नहीं आदि से अंत तक रोकों की समानता है परंतु
दोनों की शैली कोई अपूर्व समानता वाली दिखती है। वहीं व्यक्तिव बंधिस्थि विवेचना की
शैली, वहीं उदाहरण और प्रति-उदाहरण विचार और तर्क की प्रौढ़ता, वहीं प्राचीन
टीकाकारों के समान दोनों स्वतंत्रता मिलती है। बाद के पद निर्देशित अवतरणों में शब्द
और वाक्य की समानता हमारे पक्ष को पुष्ट करती हैं।

“यथा दाण्डक्यो नाम भोजः कामादो ब्राह्मणकन्यामभिभन्नमानः सबन्धुराध्रो
विनाशीति, वास्त्यायनसूत्रस्य व्याख्यानावसरे जयमदगला –

“दाण्डक्य इति राजा। भोज इति
भोजवंशजोशिमन्यमानोभिगच्छन्। स हि भूगयां गतो भार्गवकन्यामार्कमपे
दृष्टवा जातायो रथमारोप्य जहार। तवे भार्गवः समित्कुशानादायागत्य
तामपस्यनभिध्याय च यथावृत्त राजानमभिषाप। ततोसी सबन्धुराध्रः
पांसुवर्षानास्त्वयो ननाश। तत्स्थानमध्यापि दाण्डकारण्यमिति गीयते।”

जैसे दाण्डक्य नाम का भोज कामवश ब्राह्मणकन्या को चाहने वाला भाई सहित
अपने राष्ट्र का विनाश कर दिया।” विनाशायनसूत्र में व्याख्यान के अवसर पर
जयमंगला में –

“दाण्डक्य ऐसा नाम भोज वंश का जाना माना हुआ, वह शिकार के लिए जाते
समय भार्गव कन्या को आश्रम में देखकर प्रेमाभिमूत होकर रथ पर बैठाकर हरण कर
लिया। इसके बाद भार्गव समिथा (यज्ञ के लिए लकड़ी) और कुश लेकर आए और
उसको न देखकर, पूछने पर सारा वृत्तांत जानकर राजा को शाप दे दिया। इसके बाद
भाई सहित राजा एवं उसका राज्य धूल के वर्ष से दबकर नष्ट हो गया। वह स्थान
आज भी दाण्डकवन के नाम से गाया जाता है।
एवमेव दाण्डकयो नृपति: कामादित्यादि कामन्दकीयपदास्य व्याख्या: शडकराचार्यकृताजयमंड.गला –

‘तत्र नाम भोजवंश मुख्य: तन्मित्रप्रसिद्धनामा दाण्डकयो। स च मृगयायांत्सूपितो भूगवाश्रम प्रविश्य तत्तक्षणा रूपयोवनवतीभक्काकिंची दृढार्था जातरागस्ता स्वन्दनभारोप्य स्वपुरसामजगम। भूगरपि समिक्षुशादीनादाय बनादागत्य तामपश्प्नमिन्ध्याय च यथावृत्तं ज्ञात जातक्रोदसंशंसाप, ‘सप्ताभिःसहोभिः, पांसुदृष्या विपददतामिति’। स तयाक्रान्ततस्तथेव ननाश।

इस प्रकार दाण्डकय राजा के कामादि के कारण कामन्दकीय पद्ध की व्याख्या शंकराचार्य के द्वारा जयमंडला टीका की गई –

वहें भोजवंश का प्रसिद्ध दाण्डकय नामक राजा था, वह शिकार के लिए गया था, प्यास लगाने पर भूगू के आश्रम में प्रवेश करके उनकी रूप एवं और यौवन वाली कन्या को हिकसू देखकर प्रेमाभिभूत होकर उसको रथ पर बैठाकर अपने नगर में गया। भूगू लभे और कुशकों के लेकर वन से लौटे तो उस कन्या को न देखकर पूछा और वृत्तांत जानकर क्रोधित हो राजा को शाप दिए “सात दिनों में धूलवर्णण से नष्ट हो जाओ!” वह उससे आक्रांत हो जैसे ही नष्ट हो गया।

एवमहम्मुमिमोमि बाधकप्रमाणान्तरानुपलम्भे पत्तु संकराचार्यवणेव कामन्दकीयार्थशास्त्रस्य वाल्स्यायनीयकामशास्त्रस्य च टीके जयमंड.गलाख्ये, मल्लिनाथिः: कालिदास काव्यदीक: संजीवन्य इव सनामनी निर्माणियाताम।

इस प्रकार में अनुमान करता हूँ कि बाधक प्रमाणों के अनुसार शंकराचार्य के द्वारा ही कामन्दकीय अर्थशास्त्र की और वाल्स्यायनीय कामशास्त्र की, दोनों टीकाएं
जयमंगला नाम की हैं। कालिदास के काव्यों की मल्लिनाथ की टीका संजीवनी नाम की है, इस तरह ये दोनों टीकाएं की गई हैं।

वैदिकपुष्त: गोदानम

(वैदिक गोदान के पृष्ठ)

छै। वैदिक विज्ञानमहोदहोदेगुणुपदेशतीर्थ निषेधुषा पुराण व्याख्यानवीचित्रितालिता ये कंचन पृष्ठं: समनुभूयते तेषि कतिपये भवदीयपाठकवर्य उपहारीकरिण्यते।

वैदिक विज्ञान रूपी महासागर के गुरु के उपदेशरूपी तत्र पर बैठते हुए पुराण व्याख्यानरूपी लहर पर झोलते हुए जो कुछ अनुभव किए गए हैं उनमें कुछ आप पाठकों को उपहार में दिए जा रहे हैं।

तत्र प्रथम: (उनमें प्रथम)

महाकविकालिदासकृती रघुवंशे तृतीयसर्गं अयस्त्रंशे पद्ययते
‘अथाश्य गोदानविधेयनन्तरं
विवाहदीक्षां निर्वितंयदुगुरु।’

महाकवि कालिदास कृत रघुवंश के तृतीय सर्ग के 33वाँ में पढ़ा गया—
“इसके बाद इनके गोदान विधि के बाद गुरु विवाह दीक्षा को संपादित किया।
तत्र गाक: केशि दीयन्ते अवखण्डयन्ते अत्रेत्वाधारे लघुति गोदानं नाम कर्मिति व्याख्या। प्रमाणे मल्लिनाथं: केशवकोशात्—

206
“गौरिन्दित्ये बलीवर्दे ऋतुमेधर्मिष्येदयो।
स्त्री तु स्यादिशि भारत्या भूमि च सुरभावषि।।
पुरुषीयः स्वर्गज्ञामुरस्षिकटम्बाणलोकसू।”

वहाँ गायें (गाव), केश (बाल) दिए गए, उन्हें काट दिया गया, इस आधार पर ल्युटि प्रत्यय से गोदान नाम के कर्म की व्याख्या है। प्रमाण में मलिनाथ के केशव नामक कोश से –

“गो, सूर्य, बलवान बैल, ऋतुओं के भेद स्त्री, सरस्वती भूमि, कामधेनु, पुरुष स्त्री के जोड़े, स्वर्ग, वक्र, जल, किरण, नेत्र बाण और रोयें में।”

इत्युत्थार – इस प्रकार के उद्देश्य हैं।

वहाँ गोदान

“केशान्तः षोडषे वर्षं ब्राह्मणस्य विधीयते।
राजन्यवन्धोद्विंशो वेश्यस्य द्वयःधिके ततः।।

वहाँ गोदान – ब्राह्मण का केशांत सोलह वर्ष में किया जाता है, क्षत्रिय का बाईस वर्ष में और वैश्य का चौबीस वर्ष में।

इति मनुना (2.65) समानार्थनायपरेण शब्दन विहितम। प्राचीनगृह सूत्रेशु तु गोदाननाम्नेव वेदग्रहणपरो विवाहपूर्वकः समावर्तपरस्मा संस्कारो व्यवहित्यते। यथा चूडोपननगोदानविवाहा: |.... एतेन गोदानम् |षोडषे वर्ष।” इत्याश्वलायनगृहसूत्रेव (1.18.1); “अर्थात्, षोडषे वर्षं गोदानम्। चूडाकरणेन केशान्तकरण व्याख्यातम। ब्राह्मचारी केशान्तानु कार्यायते सर्वाय्यः।गलोमनि सं हारयते।” इति च गोमिलगृहसूत्रेव (3.1.1–4)
समूहल्यः। आभ्यासवतरणभूमिमिदमपि प्रदीयतेऽ यद् गोदानममिति नामायस्य
संस्कारस्य पुरा योगसूत्राः सारस्त, तदेव गृहसूत्रु प्रायुज्यत; तद् व्याख्यानमूलतः
च केशान्तपादं कालवशात्वधवद्वसृतिः तरिष्णेव संस्कारे करोह। अतं
एव केशान्तकरणमिति कृजः केशान्तनाः कारयते इत्यत्र बहुवचनं च।

ऐसा मनु के द्वारा (2.65) समान अर्थ से दूसरे शब्द में प्रयोग है। प्राचीन
श्रृद्धसूत्रोऽं तो गोदान नाम से ही वेद ग्रहण करने वाले विवाहपूर्वक समावर्तन नाम के
संस्कार का यवहार किया जाता है। जैसे - चूँकारण उपनयन, गोदान, विवाह
आदि। ' गोदान - सोलह वर्ष व' ऐसा आश्वलयान के गृहसूत्र में (1.18.1) अर्थात्
सोलह वर्ष में गोदान होना चाहिए। चूँकारण से केश काटने की व्याख्या की गई है।
ब्रह्मचारी बाल कटवाकर सभी अंग गल के रोमालों को नष्ट करें। ऐसा गोभिल के
श्रृद्धसूत्र में (3.1.1.4) प्राप्त हुआ। इन दोनों अवतरणों से यह प्रतीत होता है कि गोदान
नाम से इस संस्कार का पहले प्रचलन था। वही गृहसूत्रोऽं प्रयोग होता था। वही
व्याख्या का केशान्त वसं तत्व विवर्तन के साथ पद्यबद्ध होकर सृजितिः में उसी
संस्कार में बन गया। वही केशान्तकरण 'कृज धातु' काटने से बालों को काटने में यहाँ
प्रयुक्त है। इसलिए वहाँ बहुवचन का प्रयोग है।

इदानीमुपलब्धस्य गोदानपदस्य वास्तवमर्थमनुसर्वतः पुरातनकालिकेषु
श्रृद्धसूत्रेशु यामः। तत्र गोदानं शिरसो भाग इति पश्याम्। तथा च
काल्यायनश्रृद्धसूत्रे "अपरेण दक्षिणापिं दक्षिणं गोदामुद्वति" (5.2.14)
"दक्षिण गोदामवितायाननिः इत्सा आपः शामु में संतु देवीः: (7.2.9) इति च।
क्लेशातीत्वः। मन्त्रोऽंश शुक्लयजुर्णी (4.1)। पद्यते च कृष्णयजुःकल्पे --
"अधास्य प्राणुक्षयदक्षिणं गोदामदिभसनुबद्ध्य आप उन्दन्तु जीवसे
दीर्घायुताय वर्षसें"। इति। क्लेशातनु जीवनात्। मन्त्रोऽश्
तैतिरीपतितत्तवाः द्वितीय प्राप्तकारं एव। तद्याख्या नवसरे
सायणोऽपि गोदामं शिरसो भाग इत्याह। तच्छ गोदानं गवि भूमी दीयते
शायनकाले इति, गवां केशां उदानं उदगमं यत्र, गवः केशं उन्नति यत्र विधिनोश वा कर्मधिकरणालयुता युतपाद्यते। एवं शिरोभागवाचको
गोदानशब्दस्तरसिन्नं। गे विधीयमाने कर्मं भजया:
कृष्णतीत्वादिववज्जहत्वार्थं लक्षणं श्रृतसौधादवतीयं गृहगृहं
समाससादेन्ति निविनं भाषात्वथ्विदम्।

इस समय उपलब्ध गोदान पद का अर्थ वार्षिक में प्राचीन श्रृतसूत्रों में देखे जाते हैं। वहाँ गोदान का भाग देखते हैं तथा कायाचे में श्रृतसूत्र में “दूसरे के द्वारा दक्षिण
दिशा में दक्षिण में प्राय दर्शते हैं।” (5.2.14) दक्षिण में गोदान को वितरित करके
भिगोता हैं – इस जल से देवी मेला कल्याण करे (7.2.9) भी गाता है ऐसा इसका अर्थ
है। यह मंत्र शुच्य यजुर्वेद में है (4.1) कृष्ण यजुर्वेद के कल्प में पढा जाता है – “आगे
मुख किए हुए की दक्षिण में गोदान को खरकर जल को दीर्घायुष्य के लिए छिड़का
जाय। जीवन के लिए भिगोता जाय।” यह मंत्र तैत्रिय संहिता के द्वितीय कल्ली के
आरंभ करके ही है। उसके व्याख्या के समय सायणाचार्य भी गोदान को शिर का भाग
कहे हैं। यह गोदान शायन के लिए भूमि में दिया जाता है। केशा का उदगम जहाँ हो, गवः
अर्थात् केशा का आना जहाँ विधि के द्वारा ल्युट प्रत्यय के द्वारा होता है। इस
प्रकार शिर के भाग का वाचक होने से गोदान शल्य उस अंग में किए जाने वाले कर्म
मंच से चिल्लाती हुई को स्वार्थ से छोड़ देना या लक्षणा से वेद के महत से उत्तरकर
गृहसूत्र में पहुँचना ये सब भावाविदों के द्वारा ज्ञात है।

अथ कोड़य गोदानकामकंत्रिविधिषयारोपेण गृहसूत्रै प्राप्तस्थानकर्मणो गोदानत्वं जातं?
मिति प्राप्ते बौम। सोमयागान्
तत्प्रकृतिमिनिस्टोम वा विधित्वम्। पूर्व दीपक्यते। तत्र कृष्णयजुर्वेदाभाषणे
विधीयते “केशशमश्रु वपतेनखानिकृत्तं” तदुत्तर वार्थावदन कर्ममौत्तूर्यते
“मृता वा एषा तवलिंगम्या यत्केशशमश्रु मृतामेहत्वमालम्यपत्त्य यज्ञियो
भूत्वा मेधमृपति स्वस्त्युतरायण्यशीयति” कुशलनोक्तराणि कर्मणि साधयेम्।
अत एव “आष उन्नतु जीवसें दीर्घायुघय वर्षसे” इति मन्त्रे
गोदानकलेदनवनपूर्णांगम्। अर्थ विधि: प्रतीकोल्लेखन

209
कौन-सा श्रीर (वेदमार्ग) जो गोदान संबंधी विधि के आरोपण करने से गृहस्थ का भी गोदान लौकिक सुख के कर्म में गोदान होता है। परिनाम पाने पर हम बोलते हैं। सोमयज्ञ से उसकी प्रकृति अथवा अनिष्टों विधि से पहले दीक्षा दिया जाता है। वहाँ कृष्ण व्रजवर्त द्वारा विधान में विधान है।" केश और मूँछ बनावाना और नखों को काटना "उसका उत्तर अर्थवाद से कर्म के द्वारा उसकी स्तुति की जाती है" मरे हुए अथवा इसके चमड़े, मांस, केश मूँछ दाढ़ी, यज्ञ के लिए चमड़े और मांस को निकलकर यज्ञ करके बुद्धि को प्राप्त करते हैं और बाद में कल्याण करते हैं। अतः जीवन के लिए जल छिड़कते हैं और दीघायु होते हैं। इस मंत्र से गोदान करते हैं, पूर्व अंग का वपन करते हैं। यह विधि वाजसेनय ब्राह्मण से यहाँ उद्धृत है लेख के विस्तार के भय से दूसरे ब्राह्मण से नहीं। शाखा भेद में मंत्र भेद को छोड़कर दूसरा वैसा भेद नहीं है।

"अपरांने दीक्षे, पुराकेषमश्रोवष्ठाद यत्काम्येत तदसनीयात् यदि उनाशिशेत अपि कामो नाशनीयात्।।1। अपरांने में दीक्षा हो, पहले बाल मूँछ इत्यादि को बनवाकर जो इच्छा हो भोजन करें। तर्क द्वारा भोजन न भी करें, इच्छा हो तो करें भी।।1। अथोत्तरेण शालां परिश्रयति तदुपकम्भमुपनिद्विति तन्नापित ौपतिष्ठते तत्केषश्रमु च वपते नखानि च निकृमलते, अर्थ्यि च पुरुषायथे यत्रास्यायो नोपतिष्ठते, केशश्रमु च वायु नवेषेशु चापो नोपतिष्ठते तदात्केषश्रमु च वपते नखानि च निकृमलते मेधामूलवा दीक्षाद्विति।।2। इसके बाद दीक्षा के स्थान को पवित्र करते हैं। उसके पास कुम्भ रखते हैं उसके बाद नाजु से केश और मूँछ बनवाते हैं। नखों को काटते हैं, पुरुष के लिए यज्ञ का स्थान वह न हो जाहैं जल न मिले। इसमें केश एवं मूँछ को तथा नखों को नहीं रहना चाहिए। इसीलिए केश और मूँछ मुझाना और नखों को काटकर यज्ञ करके दीक्षा ले। ऐसा(2) तदैवै सर्व एव वपते सर्वावधेव मेधाय भूत्वा।
दीशितामहःईति, तद्व तथा न कुर्याद, यद्वेन्द्र केशस्मधु च वपते नकानि च निकृत्ते। 13। इसलिए सब कुछ मुड़कर पवित्र होकर दीक्षा लेने ऐसा, फिर तर्क से ऐसा न करे क्योंकि केश और मूँछ को मुझ्दाता है नखों को काटता है। 13। सु दक्षिणवायु गोदांवितारयति। 15। सुंदर दक्षिणा के लिए गोदान को अलग करें। 15। स दक्षिणवायु गोदामयुनिति इमा आप: शुम में सन्तु देवी: इति। 16। दक्षिणा के साथ गोदान प्रदान करें। इन जलों से देवी दक्षा करें। 16। अथ दर्भतुरुप कमन्त्वरधाति। अथ धुर्यज्ञानिनिद्वाति। 17। इसके बाद सुकुमार कुश के साथ बालों को काटें।। 17। प्रच्छिद्दोपात्रे प्रास्यति। 17। प्रास्यति। 18। काटकर बाल को जल पात्र में स्थित है चुपचाप बाद में गोदान करता है। 18। अथ नापिताय कुश प्रचह्च्चपति स वपति। 19। इसके बाद नापित (उ) को छूरा देता है, वह काटता है। 19। अधरस्यति। 10। इसके बाद स्नान करता है। 10। अथग्रंह। गवोद्दमुक्तामति। 11। इसके बाद पहले जैसा जल छिड़कता है। 11। अथ वास: परिधिते। 12। वर्तम धारण करता है। 12। तद्व अहत स्प्यात्। 18। इसके बाद वह नवीन रूप से अर्हत्वित होता है। 18। अथ धूर्य शालां प्राप्दयति। 21। इसके बाद दीक्षा के लिए निर्धारित स्थान पर पहुंचता है। 21। इति तृतीयकाण्डस्य द्वितीय खण्डे, ऐसा तृतीय काण्ड के द्वितीय खण्ड में है।

अथाप्रेण शालां तिष्ठनमभयंड.कते। 16। इसके बाद पहले दीक्षा स्थान पर बैठे हुए तेल आदि का लेपन न करें। 16। तद्व नवीनत भवति। 18। इसके लिए नवनीत का प्रयोग करें। 18। अथान्यावाणिति। 11। अयोध्या से हो। 11। अथेन दर्भप्रवित्रेण पावयति। 18। कुश से पवित्र को पवित्र करता है। 18। अथशिष्यास्मथ वाचयति। 24। इसके बाद अशीवराद को बांधता है। 24। अथान्यावाणिति। 24। अथाद. गुलिन्यज्ञचति। 25। इसके बाद उंगलियों को बटोरकर मुद्दी बांधता है। इति तृतीय खण्डें। ऐसा तृतीय खण्ड में है कि
तानि वै पञ्च जुहोति । 15 । इति च तुरीये खण्डे ।

इसके बाद पंचयज करता है । 15 । चतुर्थ खण्ड में इसके बाद —

इवं दीक्षाणीयेष्टिस्मयेते । श्रुवेनोपाधां पञ्चचाहुतयो या होतया
दीक्षानीयेष्टियारम्भे । तासु मन्त्रां । — "आकूले प्रयुजःनये स्वाहा । मेधाये
मनसेदःनये स्वाहा । दीक्षाये तपसेदःनये स्वाहा । सरसवतः पूष्णेदःनये स्वाहा ।
आपो देवीरूपोहितारिष्टशाम्भुवो द्वापारपृथिवीवर्गोनान्तरिक्ष । बृहस्पत्ये हरिषा
विधेम स्वाहा । विष्णो देवस्य नेतुर्मण्योबुद्धित सर्वयम् । विष्णो राय इष्ययकिते
धुमं वृणीत पुष्पं से स्वाहा।" (शुक्लयजुर्णि 4/7–8)

दीक्षा का यज्ञ आरंभ होता है । श्रुवा — (यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली काठ की
काछली) से पांच आहुतियाँ हवन की जाय । दीक्षा के लिए यज्ञ आरंभ हो । उनमें मंत्र है
— अभिप्रय के लिए प्रयुक्त होने वाली अग्नि को स्वाहा, धारण करने के लिए मन की
अग्नि को स्वाहा, दीक्षा के लिए तपस्या की अग्नि को स्वाहा, सरसवति के लिए सूर्य
अग्नि को स्वाहा, जल देवी, बृहति, विष्ण का कल्याण करने वाले शमु आकाश, पृथ्वी,
अंतरिक्ष । बृहस्पति के लिए हव्य (स्वामी) धनुर्धर तेज़ द्वारा वरण किये गए सूर्य को
स्वाहा। (शुक्ल यजुर्वेद 4/7–8)

न केवल ‘अगिन्यम त्वचमपहत्य याज्ञियो भवति’ त्वये चपनकर्म प्राप्तं,
अस्त्यन्य द्वस्त्याभिभुपायां प्रतिपादक तस्यावश्यं कर्त्त्वेत्वसूचकं च।
दीक्षाजूर्ण याज्ञिय कर्मजन्मोन्तररुपायेम, लोकिक यापर्यमण जीवानं परिययज्य
यज्ञं — सोमसाथ राजं सामार्ज्यं — पूर्तं जन्य भयंतो दीक्षितस्य दीक्षावे
गर्भावंतःधारणम। अत एव ब्राह्मणे मुदर्मुदाकाशितस्य सा सा
कर्त्त्वयोपदंपिष्टा, या या गमररेण सादृश्यं विद्व्याय:। यथा शतपथब्राह्मणे
— "स जयनेनाननानीमयेत्रोप्रलयो गहित्यं, सोह्यं संबरो,.....
अमित्यपायनिर्यज्ञस्य, गर्भो दीक्षितोपन्नरेण वेयो योनि गर्भं संचरनती, स यतं
तत्त्वज्ञति त्वपि त्वदा वर्तते तपस्विद्मे गर्भ एज्यति त्वपि त्वदावर्तते।...
(3.3.28);

न केवल याज्ञिक कर्म बलिक तत्त्व को त्यागना यज्ञीय होता है इसी से वपन कर्म प्राप्त हुआ है। इसके अनुरूप दूसरा ब्राह्मण है तो वह कर्मव्यसूक्त
आवश्यक कार्य संपादित करायेगा। दीक्षा रूप/याज्ञिक कार्य तो जन्मांतर का
रूप है। लौकिक पापमय जीवन को छोड़कर यज्ञ-सोमराजा के सामाज्य-पवित्र
जन्म जो दीक्षित की दीक्षा ही दूसरे गर्भ में धारण करती है। अतएव ब्राह्मण के
लिए दीक्षित के जो-जो कर्म बताए गए हैं जो उसके गर्भस्थ से समानता रखते
हैं जैसे शतपथ ब्राह्मण में — "वह दृढ़गामी आह्वानीय के पास आकर गांधपत्य
के अत्युण संचारी अर्नि को जो यज्ञ का जन्मदाता है गर्भ में दीक्षित, दूसरे
शब्दों में जो योनि में गर्भ चलता है वह जो चलता जला आता है (जो आता है
उसके ऊपर वैसा ही होता है) इसलिए ये गर्भ चलते हैं जो इधर-उधर उत्पन
होते हैं। (3.3.28); “उद्गृहणीतवा एशोउसमालोकादेवलोकमभियो दीक्षतें...” (3.4.
2); जो उधरलोक में जाते हैं वह हमारे लोक से देवलोक में जो दीक्षित होते हैं
वे जाते हैं (3.4.1); “गर्भों वा एष भवति यो दीक्षतेत स छन्दसिप्रविषाति,
तर्मान्यक्षांगुलिखि। भवति, न्याक्नाडङ्गुलय इव हि गर्भोः” (3.5.6); अथवा यह
गर्भ दीक्षा देकर छंदों में प्रवेश करता है वहाँ वह मुद्रकी बाधे हुए होता है। (3.5.
6) “अथ मेखलां परिहरते — इसके बाद मेखला का लयांग करता है।”

सा वे साणी भवति, मृदयुसत्तौ इति नेव साणी;
यत्र वै प्रजापतिरजायत गर्भो भूवैतमाद यज्ञात, तस्य
यन्नेदिष्ठमुल्यभास्वते श्रणा, तस्माते पूर्तयो वान्ति; यद्रस्थ
जराय्यासीतदीक्षितव्यावंसन, अतरं वा उल्लं जरायुतो भवति, तस्मादेशान्तरा
वाससो भवति; स यथेत: प्रजापतिरजायत गर्भो भूवैतमाद यज्ञात्” (3.5.
10.11): “अथ नीविमुदगृहते। अर्थ प्रोपृते गर्भो वाकएष भवति यो दीक्षते
प्राप्तुता वै गर्भ उत्स्वेन जरायुनव तस्मादेष्टे प्रोपृते” (3.4.15.16);
कृष्णविषाणुसिंचि बधीते। तां वातुलामामिव बधानि उत्तानेव वै
योगिगत्विविधतिः अथ दक्षिणाः भ्रुवमुपपयुपपरि ललाटमपपसपशातीन्द्रस्य योनिरसीति, इन्द्रस्यधार्यो योनि; अतो वा होना प्रविष्ठन प्रविष्ठति, अतो वा जायमानो जयते (3.4.18.19); “अथ न दीर्घितः काष्ठन वा नखेन वा कण्डयेितं, गर्भं वा एष भवति यो दीर्घिते, यो वे गर्भस्थ काष्ठन वा नखेन वा कण्डयेिद्वारमपश्चमैव दीर्घितः पामनो “भवितोदीर्घितं तं आनुरूपता”, सिततो रेता, “सि पामनानि जनितोः, सवा वे योनि रेतो न हिन्दस्येश स्वाक्ष्यत यो योनिर्मिति यत्रकृष्णविशिष्याण, यथो हैनमेषा न हिणारतिः, तस्मादींदीर्घितः कृष्णविशिष्याप्रोक्त कण्डयेित्त नान्येन कृष्ण विशिष्याणाः: (3.5.31)”

इत्यादि बहुत्र।

जहाँ वह प्रजापति के समान होता है। वह गर्भ की दुर्गथयुक्त झिल्ली से चमकदार होता है। इस यज्ञ से गर्भ में होकर वह प्रजापति के समान पवित्र हो जाता है। जैसे गर्भ की झिल्ली में शिशु रूप में रहकर वह चमकदार और पवित्र हो जाता है। जब वह गर्भवस्त्र में झिल्ली के भीतर रहता है तो दीर्घित होने का संस्कार पाता है। अर्थात् वैसा ही वंशज अथवा गर्भाशय की झिल्ली में रहता है बाद में उसका वंशज प्राप्त करता है। उस यज्ञ से गर्भ में होकर वह प्रजापति हो जाता है। (3.5.10.11)

इसके बाद कमर धोती के बंधन को छिपाता है। जो इसका गर्भ लाया हुआ होता है जो पहले का दीर्घित है वह गर्भाशय की झिल्ली से ही लाया होता है (3.4.15.16) काले मृग की सींग को कमर में बांधा जाता है उसको ऊपर मुंह करके ही बांधा जाता है क्योंकि योनि उत्तान रूप में ही गर्भ धारण करती है। दाहिनी भौंह के ऊपर ललाट से स्पर्श करती हुई इन्द्र की सींयनियों थी। इन्द्र की यह योनि है इसमें प्रवेश करते हुए प्रवेश करता है इसलिए उत्तरन होने वाला उत्तरन होता है। (3.4.18.29) यदि दीर्घित नहीं है तो काठ से अथवा नख से खुजलायं अथवा यह गर्भ दीर्घ होता है। वह गर्भ के काठ से अथवा मख से खुजलाएं पुः मिट्टी से दीर्घित करें तो चर्म रोग अथवा खुजली न होवे। अथवा वीर्य से निर्मित वीर्यवान हो, चर्मरोग न होवे (खुजली)। अतः योनि में ही वीर्य इसको नष्ट कर देता है या यह स्वयं योनि में होता है। इसलिए कृष्णमृग के सींग इन खुजलियों को नष्ट कर देता है। इसलिए दीर्घित को कृष्णमृग के सींग से खुजलाना चाहिए दूसरे से नहीं (3.5.31) ऐसा कहा गया है।
ऐतरेय ब्रह्मण (1.1.3) चालनात्ते - "पुनर्व एतमुस्विजो गर्भ
कुर्वति व दीशयति। अदिशरमिलितवति, रेतो वा आपः, सरेतसमुहेंवें
तत्कृत्या दीशयति। नवनीतेनायम्यायुं। पितृणां नवनीतन गर्भाणां, तद यन्नीतेनायम्यायुं। स्वेतेवेंवें
तदभागधेयेन समर्थयति। आज्ञान्येव, एकविवायायादभिपिंजूलैः पावयति।
दीशितविविषिण प्राप्ययति, योनिवर्ष एषा दीशितस्य यदीशितविविषिण, योनिमेवेंवें
tतत्कृत्या प्राप्ययति, तस्मादधवादवादवनेरस्ते च चरति च तस्माद
धुवादवनेरमेभर्म धीयति च प्र च जायते।। वाससा प्रोणुवन्युलो वा
एतदीशितस्य यद्वासः, उत्तवेवेंवेंतत्रापुववति। कृष्णाजनमुत्तेन भवति,
उत्तरेन वा उत्तान्यानाय, जारायुणेवें तत्रापुववति। मुडीकुरुतेन, मुडी वै
कृत्वा गर्भान्तः शोते, मुडीकृत्वा कुमारो जायते।। उन्मुद्य कृ
श्चाजनमवृह न मय्येति, तस्मानुभुगत गर्भं जारायुजिम्यं। सहेव
वाससभ्येति तस्मात सहेवेल्पें कुमारो जायते।।" इति।

ऐतरेय ओर बहादुरमण में (1.1.3) कहा गया है कि ऋतिपज ही जिसको दीषित
करते हैं वे गर्भ करते हैं। जल से सीखते हैं, वीर्य अथवा जल, वीर्य के साथ इसको
वैसा करके दीश देते हैं। नवनीत से सीखते हैं। (सनान कराते हैं)। देवा को सुभरी के
धी से मनुष्यों को जमे हुए धी से और पितृों को नवनीत से गर्भ कराते हैं। जो
देवेवालों के द्वारा प्रदान किया जाता है उसके भाग को दाता पाता है। इद्भीश कुशों
द्वारा धी से इन्हें पवित्र करता है। दीषित द्वारा निधिरित को प्राप्त कराता है अथवा यह
दीषित द्वारा निधिरित योनि में स्वयं को उत्पन्न करता है अतः निधिरित रूप से योनि
होने और चलने पर निश्चित रूप से योनि में गर्भधारण होते हैं। वस्त्र से ढंका हुआ
अथवा जिल्ली ही इस दीषित का वस्त्र है जो कि जिल्ली के द्वारा ढंका होता है। कृष्ण
मृग का चर्म ही वस्त्र होता है। उत्तर अथवा गर्मिश्य की जिल्ली से ही वह आवृत होता
है। मुडी बांधकर वह गर्भ में सोता है और मुडी बांधे ही शिशु उत्पन्न होता है।
मृगच्छ को हटाकर मंत्र के जल से स्नान कराकर उसे झिल्ली से मुक्त किया जाता है क्योंकि वह गर्म के भीतर से निकलता है। शिशु वस्त्र के साथ अथवा झिल्ली के साथ ही उत्पन्न होता है।

अतएव गर्मसाधुस्य सम्पादनायो दीक्षितस्य केशामुखवपनन नखनिक्कलनं चादश्य प्राप्तं, न क्वापि प्रत्रुढ़केशामुखवि यो वा गर्भ कोडपि श्रुतो लोमशो वा गन्धारीणामविकेव। तत्च वपनं प्राधान्येन गोदान एवेति दीक्षापूर्वांि। गमूँं त वपमेव श्रीतो गोदान संबंधी विधिगोदानविधियं दुःस्त्र दीक्षा निर्विवर्यते। न च रनामयुज्ञादिकामान्तर्यविधाताकमिति वाच्य – मम्मिविहिता नान्तर्यस्यापेक्षायं नासित; विप्रकृष्टान्तर्यम्यान्तर्यम्यौक्त, यज्ञकर्मण उत्तरोत्तरं सत्तामाध्यये रोधामािदातािर्यम्यावहत्व; मेधयत्सम्पादककर्मणं, सवेया मेव प्रधानं प्रथमं च गोदानकर्मं उपलक्ष्यते च तेन सर्वमयुज्ञानादिति, अतएव प्रधानकर्मणो दीक्षा आन्तर्यकेव प्रधानं प्रथमं च गोदानविधेयरिति चतुर्भि तस्माद् गोदानविधेरस्त्तरं दीक्षितं वक्तं समुचितम्।

अतएव गर्भ की समानता के लिए दीक्षित का बाल, मूंछ और नख अवश्य करे होने चाहिए। कहीं बढ़े हुए बाल, मूंछ और नख का उत्तम गर्म अथवा गर्म चुना गया है जैसे – लोमश अथवा गांधारी और अंकिका के गर्म उनकी क्रियाओं के अनुरूप हुए। इसलिए वपन में प्रधानता से गोदान, दीक्षा के पहले का आवश्यक कार्य है। वपन के लिए वेद में गोदान संबंधी विधि और उसके बाद दीक्षा लेने का वर्णन है। और न स्नान और अंगराग आदि के लेपन अत्यंत आवश्यक कर्म कहे गए हैं। इन कार्यों को करना अति अपेक्षित नहीं है। अति कठिनाई से किए जाने के बाद भी यज्ञ का कर्म उत्तरोत्तर अवश्यक के बाद किया जाय। यज्ञ के संपादन कर्म में प्रधान गोदान कर्म है उसे बाद अंगरागादि का लेप है। अतः प्रधान कर्म की दीक्षा के बाद प्रधान गोदान कर्म है जो चार बार है अतः गोदान कर्म के बाद दीक्षा उचित है।
अतएव गृहोपत्त गोदानविधि लिखनगोदानशब्दसमरणमार्गे
जातश्रौतगोदानवपन तदुत्तरदीक्षापीतस्तुमहाकविविधवाददीक्षामिति पदे
कमयदभुतं चमकारं पुपोष क्षेमेत्रभिसुं च स्वीय वैदिक कल्पप्रचयं
ददो। इतरथा दीक्षापदयोगस्य वैपर्यापते। न च “दीक्षा
मोपड़ेवियोपनयनवतादेशस्य” विषय धातुपादी विवाहां व्रतादेशो गतं इति
वच्यम्। यथा यथा प्रयोगोपलमस्तथा तथा धातुपादथारोपयोगः; न तु
धातुपादमशिश्व शब्दचपटनं कुमकारवत। समानार्थेः वा शब्देदुर सदृशे
वर्णसमुदायो धातुतवें गृहते, प्रयोगवाल्याविरूढशर्षार्थस्त्र तस्य
निविष्टे। ततः शब्दश्रूक्ष भ्रामणेण नववार्ष्णभाजि शब्दे वृद्धि
यथार्थपारायणमिपि। उदाहरणं चात्र गोदानं — गोदानविधि —
केशान्तकरण— केशान्तकर्म प्रयोगः एवाप्यायम्। दीक्षाश्रद्धोपि याज्ञपूर्वार्णः
प्रयुक्तमानः सुप्रकृतार्थ विहाय क्रमशे नियममात्रे प्रससारसः। गोदान शब्द}
प्रयोग सहयोग स्वास्त्यसत्ता च दीर्घशब्दस्य सन्निकृष्टसौधव्यक्तिः।
विवाहसम्बन्धिः पूर्वार्णः गृह प्रतादेशं निर्वर्त्यदिल्लिचर्यथस्तु तदुत्तरं विवाह
विधि निर्वर्त्यदिति वर्णान्तरसमप्तिः तत्तु नोपालभमः पदः वा पदान्तरे वा।
नापि महाक्ष्यो धातुपाद पुरसः कृत्यप्रचालात्मकवेशणाय तिष्ठति।
नायुर्धिः च कोविः प्रतादेशेण विशेषेण विवाहसम्बन्धी। नगरस्मंदश्यानादिस्तु
सामावत्ताः (गोदाना)दंगुर्मूत्स्यस्य समाविष्टेव विवाहः।
अक्षारसम्बन्धानादिस्तु त्रित्रात्वाप्रतादेशो विवाहोपरकलिको न
गोदानस्यविध्यतरः; चतुर्थिव्रतावन्तः स पूर्वं विवाहप्रक्ष्यते न तु
गोदानविवाहयोगेऽष्ये प्रति। अतो विवाह एव दीक्षिः यथायान्तरसः न
किमपि शर्षम। उरौरूपते च तरिन लुप्तोपमयाः यथा गोदान संबंधित
श्रूतिविरूढतः दीक्षा यागसाधिका निर्वर्त्यं तथेत गुरुदिलिपो
गृहकेशान्तकर्मणी (पूर्व गोदाननामः व्यवहार्यस्या) उन्ते स्नातकस्य
रघुरूपेमेधसाधनं विवाहं निर्वर्त्यदित्वमिति कोपि
सहयोगविवेदकमत्तकारितिः गोदान विधि — अनन्तर दीक्षिते
शब्दचतुष्ठापर्यथ्यविधिं।
अतएव गृहसूत्र में कहे गए गोदान विधि लिखते हुए गोदान शब्द के स्मरण मात्र से श्रौतक्रम में गोदान और वपन के बाद दीक्षा की क्रिया महाकवियों के द्वारा विवाह और दीक्षा का अद्भुत चमत्कारों को पुष्ट किया गया। क्षेमेन्द्र के द्वारा अपनी वैदिक कल्प में परिचय दिया गया। इसके अलावा दीक्षापद्धति के उपयोग में व्यर्थ की आपत्ति है। और न "मुण्डन और उपनयन श्रवण की दीक्षा लेना है।" सिधि धातु पाठ में विवाह के लिए व्रतादेश किया गया है ऐसा पढ़ा जाय। जैसे--जैसे प्रयोग प्राप्त होता गया वैसे--वैसे धातु के पाठों की वृद्धि हुई। धातु के पाठ का सहारा लेकर कुम्भकार के समान शब्दों का निर्माण होता है। समान अर्थों में अथवा शब्दों में समान वर्णों के समुदाय धातु के रूप में लिये जाते हैं प्रयोग की बहुलता के अनुसार उसका अर्थ निर्धारित होता है। शब्दों के समूह प्रयोग में नये--नये अर्थों को उपयन करता है। शब्दों की वृद्धि होने पर उसके वास्तविक अर्थ का पाठ आवश्यक है। उदाहरण के लिए गोदान शब्द का गोदान विधि, केशों को काटने के लिए केशान्त प्रयोग ही देखते हैं। दीक्षा शब्द भी यज्ञ के पूर्व अंग में प्रयुक्त होकर अपने संकुचित अर्थ को छोड़कर नियम मात्र का प्रसार करता है। गोदान शब्द के प्रयोग के सहयोग से दिन के बाद दीक्षा शब्द की निकटता का सौंदर्य भी है। विवाह संबंधी पूर्वागीण ब्रतों का आदेश करने के लिए उसका अर्थ विवाह तिथि पूर्ण करने से वर्ण के अंतर की आवश्यकता है उसको हम नहीं प्राप्त करते हैं चाहे पद्म हो या गद्द हो। महाकवि भी धातुपाठ को आगे करके प्रचलित अर्थ की ही खोज करते हैं। विशेषतया से विवाह संबंधी कोई व्रतादेश नहीं है। नंगी स्त्रियों को देखने आदि से समावर्तन के अंगभूत (गोदान) की समाप्ति ही विवाह है। खारा और नमकीन आदि भोजन का निषेध विवाह आदि के तीन रात के ब्रतों का विधान है, गोदान आदि का नहीं। चतुर्थी के दिन हवन के बाद गोदान का विधान है विवाह के मध्य में नहीं होता है। अतः विवाह की दीक्षा है यही दूसरे रूप में व्याख्यानों में कथित है। बलपूर्वक लुप्तोपमा के द्वारा गोदान संबंधी वैदिक विधि के बाद दीक्षा यज्ञ को सिद्ध करने के लिए किया जाता है। उसी प्रकार दिलीप गृह्य के अंत में (पहले गोदान नामक कर्म व्यवहार होता था।) अंत में रसातक रघु के गृहस्थ आश्रम के साधन
विवाह को संपन्न कराते हैं। कोई सहधर्म को जानकर चमत्कार की अतिशयता से गोदान विधि के अन्तर दीक्षा हो ऐसा शब्द के अनेकार्थ (चतुष्ठय) परंपरा से ध्वनित होता है।

तत्सामयिकाः श्रव्यकाव्यप्रेमिण: श्रौतकर्मणामविरलप्रचारान्नन्तरस्मिनाद्विम भृगकबेरशर्य व्याख्यानमन्तैव बुधुनरिति मन्यामहे। दुर्वायविक्रमृचिन्तायाः।
कालिदासभारत्याः: सज्जीवनाय यतमानोडव मलिनाथ खूररियदि स्वकारे तत्रिमानंभजितं वैदिक कर्मकल्पकलापे न स्वारस्यवेदक्त्यचिनोत्तरहि किमाश्चर्य यश्निकमसाराजो विश्वं शताब्दं बाद.ग.: कशसन टीकाकारों गोदान धेनुदानमति व्याचिक्यो नामशेषतां गते श्रीतविवधो?

तत्कालीन श्रव्यकाव्य के प्रेमी के वैदिक कर्मों में लगातार प्रचार के कारण धीमे सितार की ध्वनि के समान कवि का आशय व्याख्यानों का मतान्तर ही जानें, ऐसा मानते हैं। बुरे व्याख्या रूपी विष से मूंछित सी कालिदास की सरस्वती (वाणी) द्वारा जीवित करने के प्रयाससत मलिनाथ विद्वान (सूर्य) यदि अपने समय में दुर्वैल हो जाय तो वैदिक कार्यकलाप में अपने सुख का रस नहीं प्राप्त करता है तो विक्रमादित्य के राज्य में बीसवैं शताब्दी में बांग नामक कोई टीकाकार गोदान को धेनुदान ऐसी व्याख्या किया है तो वैदिक विधि का केवल नाम ही शेष बचा।

भवभूतिरिपि कालिदासस्य छायामनुहन्नुल्लचरितस्य प्रथामार्गे जानक्या मुखे “एदे क्षु तपकालकिदगोदामन्द.गला चतारो भादरो विचारदिकिष्केंद्रुम तुम्हें” इतिक्षिपति। उदाहरणान्तरेषु तत्स्यापि वैदिक परिचयः प्रतीते। एतदशवायकानवसरे टीकाकृतो वीरराधवस्य पाण्डित्यं परमनु "गोदामन्द.गलं शौरकर्म तस्य मद.गलर्थ त्वाम्न्द.गलस्य। विवाहेन दीक्षिता विवाह दीक्षिता इति विवाहेनुकप्रतिवन्तं इत्यथः। | ओऽमः।
प्रजा परिषदः स्थापना विधिः
अं समः शिक्षिनः

अपि प्रजा परिषदः स्थापिते शरिरीये विधिः।
शुभ दिवसे श्राद्ध उपोशो हरे स्री गराणा
पंचमक्षी दृष्टिः सर्व। स्वामिनी सर्वभौमः अमः
तत्र संकल्पः। अर्जनरूपः
परमिष्ठासि ससतवर्णानि संदर्भः यथेष्ठानि निर्मिति
साधनासंगमः। प्रजापरिषदः
का तरः। अतिरिक्तः एकत्वाभिभूतविशिष्टः कायम्
विशिष्टान्तः युनः प्रहसनम् एकादशमेव तत्रस्मिनः
तत्र साधारणः।
तत्र अतिरिक्तः एकत्वाभिभूतविशिष्टः कायम्
अर्जनरूपः

(जु १९४२ - ५)

तत्कालीकृतः पूर्वः विशेषः। भक्तमयः परम्परागतः तत्र साधनम्
प्रविष्टांतः प्रथितः सम्बन्धानुपलब्धिः। कतः सहारणः
तत्कालीकृतैः प्रथितः सम्बन्धानुपलब्धिः।
अर्जनरूपः प्रथितः सम्बन्धानुपलब्धिः।
प्राचीन रिजिल्ट में दो तथ्यात्मक राजस्व संबंधित युक्तियों के दर्शायाते। एको (दूसरे हिसाब) (चार 187)

देव ने राजन्य-रञ्जनानान्द्विति। सूर्यभुग्न परमेश्वर मार्ग के आलेख का उस ग्राम में राजने लाया यह। वहने दो-पच्चीस साल सहित ते अधिक हाल स्वतंत्रता के।

वन ईच्छा के सहायता द्वारा राजने दूर दूर लाभ।

मृत्यु न करते दीया यह दर्शन विशेष विद्या कारण संगीत।

मे ने यह दिखाया के परसर के समय संभावना।

हर न यह भावभेदना करने विशेष आदेश करते।

हर समय संभावना संताने मात्रेन बधिरे।

(अभियंता०१५१८३)

तत्त्व निष्कारण विषय संवाक्षर।

लक्षण उपमान संस्कृत।

(अभियंता०१५२७)

तत्त्व उपमान संस्कृत।

लक्षण उपमान संस्कृत।

(अभियंता०१५३१)
भवभूति की कालिदास का अनुसरण करते हुए उत्तरारम्भित के प्रथम अंक में जानकी से "ये तात्त्विक गोदान मंगलाचार आदि विवाह की क्रियाएँ हैं।" से कहलवाते हैं। दूसरे उदाहरणों में उसका वैदिक परिवर्त मालूम होता है। यह अश व्याख्यान के अवसर पर टीकाकार वीर राघव के पाणिनि को देखें - "गोदान मंगल शौरकर्म का है, उसके मंगल अर्थ के कारण मंगल ही है। विवाह के लिए दीक्षा ली है अतः विवाह दीक्षित कहलायी ऐसा अर्थ विवाह हेतु ब्रत के लिए है।

प्रथम प्रकाशक - संस्कृत प्रवाचकर

प्रजा परिषद्: स्थापना विधि : (प्रजापति परिषद् की स्थापना)

ऊँ नमः शिवाय

प्रजापति परिषद् की स्थापना में शास्त्रीय विधि।

शुभ दिन में प्रातः पुरोहित द्वारा श्रीगणेश और मातुका (पितरों) की पूजा, कलश स्थापना, नवग्रहों के यज्ञ का कार्य उसके बाद संस्कार "ऊँ तत्सत् इत्यादि यज्ञमान के संकल्प प्रजा, संतानादि कल्याण पूर्वक स्वराज्य की कामना से इस प्रजा परिषद् की प्रतिष्ठा द्वारा संपूर्ण अभ्येत की सिद्धि की कामना बाला में विशेष होम से युक्त ग्रहों का यज्ञ करुँगा। वहाँ साधारण हवन के बाद वाजपेय आदि पांडव मंत्रों की आहुति दो सो बाद करें, जिसे हजारों मंत्रों की संख्या में अन

1. वाजपेय यज्ञ करने वाले का उत्पन्न करें।
2. वाजपेय यज्ञ को उत्पन्न करें।
3. वाजपेय यज्ञ के बाद उत्पन्न करें।
4. सोम और राजा की रक्षा करें।

अर्यमण वृहस्पति (यजुर्वेद 9.23.20)
इसके बाद यज्ञ के पूर्व पुरोहित और सभी लोगों एवं पूजोपचार की सामग्रियों सहित समाभोप अथवा पवित्र पृथ्वी पर पृथ्वी देवी और सभा का आवाहन करके पूजा करता है।

इसके बाद वादयंत्रों के शब्दों से गुंजायमान राजपरिशिद्ध और सहयोगियों के साथ राजा प्रवेश करता है। प्रवेश करते हुए पुरोहित पढ़ता है।

“सभी यशस्वी हों, सभा सहित, मित्रों सहित सभी प्रजान यहं, पितरों और अंगुष्ठियों का समूह राजपेय यज्ञ से पापमुक्त हों।”

सभी समासद पहले ही एकत्र होते हैं।

आसन पर विढ्यूर्वक राजा के बेठ जाने पर पुरोहित उनको तिलक लगाता है और कंगन बाँधता है। उठकर राजा पृथ्वी की पूजा करता है वहाँ मंत्र है – “पृथ्वी माता को नमस्कार है। (यजुर्वेद 9/22)

हे पृथ्वी माता! मैं तुम्हारा पुत्र हूँ, तुम मेरी रक्षा करो (यजुर्वेद 10/22)

इसके बाद सभा की पूजा करके मंत्रों द्वारा पूजा की जाती है –

हे प्रज्ञापति की दोनों पुनियों मुझे मेरी सभा के साथ रक्षा करो जिसके साथ वह मेरे पास आकर पितरों के साथ मेरी शिक्षा को सुंदर बनाओ। अतिसभ्य मनुष्यों से युक्त विद्वानों की सभा और वाणी की रक्षा करो। इस सभा में बैठे हुए अति विद्वान, वाणी और विज्ञान को देने वाले हैं इंद्र सभा सहित मुझे ऐश्वर्य प्रदान करो।

(अथ्वेद 6/92/92)

इसके बाद आसन पर बैठता है – वहाँ मंत्र है –

“हे वरुण! प्रति धारण करके बैठे हुए इस राजा के साम्राज्य में सुंदर यज्ञ कराओ। (यजुर्वेद 90/26)

उस स्थलित का करके सभा के आरंभ में राजा के निवेदन कर लेने पर बाद में रिश्वत (उपहार) दिए जाते हैं। राजा के दाहिने जंघों को स्पर्श करके शपथ ग्रहण करते हैं। इसके बाद सभा के लोग एकत्र होकर सुंदर फूलों से बनी हुई एक माला को लेकर
राजा के कण्ठ में पहनाया जाता है। वहाँ मंत्र — "हे इंद्र तुम पूर्व दिशा के राजा हो, उत्तर दिशा में वृत्तासुर को मारने वालो हो। जिसका सुंदर ब्रत वाले पितर जाते हैं उस दक्षिण दिशा में मनुष्यों के स्वामी द्रव्य लेकर रक्षा करो।"

(काठक 0/96)

देवगण राजा के द्वारा प्राप्त शैवन की रक्षा करते हुए यह अयोध्य (अर्थात् — इससे कोई युद्ध न कर सके) हो जाय और यह संपूर्ण प्रजा पर शासन करें।

(काठक 994)

इसके बाद वे माला धारण किये राजा अपने आसनों पर बैठे हुए सभासदों से मंत्रणा करते हैं —

"इसमें इंद्र, यम, मनुष्यों द्वारा किये गये यज्ञ से आप लोग तेजस्वी हो।"

(यजुवेद 90/22)

जो मेरा मन दूर या दूसरे स्थान पर गया हुआ है वह पुनः लौट आये और मन मेरे ही रक्षण करे।

(अथर्वेद 6/92/3)

मेरे सभा में रहने वालों, सभा के सभ्य सभासदों की रक्षा करो।

अथर्वेद (19/44/4)